ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरू अमर दास जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

नोट: यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

विषय-सूचि

1. प्रारभिक जीवन
2. पूर्ण गुरू की खोज
3. योगी शिव नाथ
4. गोइन्दवाल बसाना
5. बाउली (जलकुण्ड) का निर्माण कार्य
6. भाई सावण मल जी
7. हरीपुर का नरेश गुरू दरबार में
8. सुपुत्री भानी के लिए वर का चयन
9. गुरू का लंगर
10. दासू जी द्वारा गुरू कहलवाने का असफल प्रयास
11. दातू जी
12. पण्डित हरी राम (तपस्वी)
13. श्री गुरू अमर दास जी गुरमति प्रचार यात्रा पर
14. रूढिवादियों द्वारा गुरूदेव के विरूद्ध आपत्ति
15. पेय जल के कारण झगड़े
16. भाई लंगह जी
17. गंगू शाह
18. नथो तथा मुरारी
19. पण्डित बेणी जी
20. भाई पारो जुल्का जी
21. बीरबल का गुरूदेव से मतभेद
22. सम्राट अकबर को जेठा जी ने संतुष्ट किया
23. सम्राट अकबर गुरू दरबार में
24. गोइन्दवाल की बाउली गंगा सम
25. भाई फिराया जी
26. भाई जेठा जी की सेवा भक्ति
27. नवीन नगर का निर्माण
28. स्वयं पाकी संन्यासी को उपदेश
29. गोइन्दवाल में बैसाखी पर्व
30. भाई प था जी
31. पंडित बूला जी
32. उत्तरधिकारी का चुनाव
33. गुरूदेव परम ज्योति में विलीन

गुर अमरदास की अकथ कथा है
इक जिह कछु कही न जाई।।

पृष्ठ नं. 1406

भले अमर दास गुण तेरे तेरी ओपमा तोहि बनिआवे ।

पृष्ठ नं. 1396

प्रारम्भिक जीवन

श्री गुर अमर दास जी का प्रकाश (जन्म) 5 मई सन् 1479 ईस्वी में बासरके गाँव (अमृतसर से लगभग पाँच मील की दूरी पर) में हुआ । आपके पिता का नाम श्री तेजभान (भल्ला) व माता का नाम लछमी जी था । तदानुसार 8 ज्येष्ठ संवत 1536 विक्रर्मी को हुआ । श्री तेजभान जी चार बेटे थे । ये संयुक्त परिवार के रूप में जीवन निर्वाह करते थे । आप लोगों के पास खेतीबाड़ी के लिए बहुत सी भूमि थी परन्तु परिवार बड़ा होने के कारण खेतीबाड़ी पर आधारित व्यापार भी करने लगे थे । आप किसानों से उनके उत्पाद खरीदते थे और उनके बदले उनकी आवश्यकताओं की वस्तुएँ इत्यादि बिक्री करते थे जिससे लाभ के कारण व्यवसाय खूब चल निकला था । श्री अमर दास आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते थे । अत: आप विवाह करवाने के इच्छुक नहीं थे । इसलिए आपके छोटे भाईयों का विवाह कर दिया गया । किन्तु सामाजिक दबाव पड़ने पर आप विवाह के लिए 28 वर्ष की आयु में सहमत हुए । अविभावकों का तर्क था कि गृहस्थियों के बीच में रहने पर विवाह अनिवार्य है अन्यथा सन्यासी बनकर घर त्यागना पड़ता है । आप सन्यासी होना नहीं चाहते थे क्योंकि उनकी कमजोरियों को खूब जानते थे । सन् 1503 में आप का विवाह गाँव सणखत्रे में देवीचन्द की सुपुत्री मन्सा देवी से सम्पन्न हुआ । आपकी चार सन्तानें हुई क्रमश: दानी जी, मोहन जी, मोहरी जी तथा भानी जी ।

आप सनातनी हिन्दु थे किन्तु आपके हृदय की अवस्था सदैव सत्य की खोज में रहती थी । आप परम्परागत प्रचलित धार्मिक कर्मकाण्ड, जप-तप, दान-पुण्य, तीर्थ स्नान, शुभ-अशुभ, जाति-पाति, ऊँच-नीच में पूर्ण विश्वास नहीं बना पा रहे थे परन्तु विरासत में मिले इन कर्मो को करके कुछ प्राप्ति करना चाहते थे । जब आप इन कर्मो से ऊब गये तो आपने 40 वर्ष की आयु में किसी पूर्ण ज्ञानी पुरूष की खोज में प्रत्येक वर्ष गँगा स्नान के बहाने हरिद्वार जाना प्रारम्भ किया। आपको विश्वास था कि कभी न कभी ऐसे महापुरूष से अवश्य ही भेंट होगी जो उनको शाश्वत ज्ञान प्रदान करेगा । आपकी दृष्टि हरिद्वार में प्रत्येक वर्ष किसी सतपुरूष की खोज में रहती । किन्तु आपकी कसौटी पर कोई सन्यासी, योगी, संत, ऋषि खरा न उतरता, आपने भी खोज जारी रखी । वास्तविकता यह थी कि आप कई तथाकथित ज्ञानी पुरूषों से मिले किन्तु निकटता होने पर वह आप की दृष्टि में अधूरे अथवा त्रुटियों से भरे हुए होते क्योंकि वह सभी अपने मन के गुलाम पाये जाते । आप का लक्ष्य था - मैं उस महापुरूष को गुरू धारण करूँगा, जिसने मन पर विजय पाई हो । आखिर 20 वर्षो के पश्चात् एक बार एक वैष्णव साध के व्यंग के कारण आपने यह खोज गँगा किनारे हरिद्वार में न जा कर अपने ही क्षेत्र में प्रारम्भ कर दी जो रंग लाई और आपको उच्च कोटि के पुरूषों में ला खड़ा कर दिया ।

पूर्ण गुरू की खोज

सन 1541 का वृत्तांत है। श्री अमर दास जी अपनी जीवन की बीसवीं हरिद्वार गंगा स्नान यात्रा करके अपने गांव बासरके जिला (अमृतसर) लौट रहे थे तो रास्ते में मेहड़े गांव में पण्डित दुर्गा दास की सराय में ठहर गये। पण्डित जी ने यात्रियों की सुविधा के लिए सभी प्रकार के प्रबन्ध कर रखे थे। अत: यात्री इनके यहाँ से सन्तुष्ट जाते थे। अमर दास जी ने सराय के निकट वाले बागीचे में एक पेड़ की छाया में विश्राम के लिए आसन लगाया और सो गये। तभी पण्डित जी वहाँ यात्रियों की सुध लेने पहुँचे। देखते क्या हैं कि एक अधेड़ आयु का व्यक्ति जो गहरी नींद में है, उसके चरणों में पद्म रेखा है। पण्डित जी ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे, अत: उनकी विद्या अनुसार पद्म चिन्ह वाला व्यक्ति कोई प्राक्रमी पुरूष होना चाहिए अन्यथा चक्रवती सम्राट। परन्तु यहां उन्हें उस व्यक्ति में कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं दिए। अत: वह आश्चर्य के कारण वहाँ उनके निकट उनके उठने की प्रतीक्षा में बैठ गया और विचारने लगे मेरी विद्या अथवा शास्त्र कभी गलत नहीं हो सकते। यह अवश्य ही कोई बड़े व्यक्ति हैं। जब अमर दास जी की नींद खुली तो उन्होंने पण्डित जी से पूछा, "श्रीमान जी आप मुझसे क्या चाहते हैं और आप मेरी प्रतीक्षा में क्यों बैठे हैं ?" इस पर पण्डित जी ने कहा, ''यजमान कृप्या आप मुझे बताये कि आप कौन हैं?" उत्तर में अमर दास जी ने बताया कि मैं वास्तव में एक साधारण पुरूष ही हूँ परन्तु मैं प्रतिवर्ष गंगा स्नान करने जाता हूँ और प्राय: आपके यहाँ इस सराय में ठहरता हूँ। यह सुनकर पण्डित दुर्गा दास जी कहने लगे वह तो ठीक है आप मेरे परिचित हैं, मैंने कई बार आपको आते-जाते देखा है परन्तु आज संयोग से आप के चरण देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमें

पद्म रेखा है। ज्योतिष विद्या अनुसार यह लक्षण अथवा चिन्ह आसाधारण है। अत: मुझे आश्चर्य है कि अभी तक यह लक्षण फलीभूत क्यों नहीं हुए। इस पर अमर दास जी मुस्कुरा दिये और कहा, ''पण्डित जी आपको कोई भूल हुई है।" उत्तर में पण्डित जी कहने लगे ऐसा नहीं हो सकता। मेरे विचार से अभी समय और संयोग नहीं बना। खैर...... आप अवश्य ही किसी महान अवस्था की प्राप्ति करेंगे ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस पर अमर दास जी पण्डित को कुछ धन दक्षिणा में देने लगे तो पण्डित जी ने लेने से इन्कार कर दिया और कहा, ''मेरी यह दक्षिणा आपके पास सुरक्षित रहनी चाहिए। जब आपको मेरी भविष्यवाणी अनुसार प्राप्तियाँ होगी तो मैं आप से माँग लूँगा।"

अमर दास जी वहाँ से अपने गाँव बासरके के लिए चल पड़े। रास्ते में उनको एक वैष्णव बैरागी साधु मिला। यात्रा की मंजिल एक थी। अत: रास्ते में विचार विमर्श करते आगे बढ़ते चले गये। साधु को अमर दास जी का व्यवहार बहुत अच्छा लगा। वह भोजन भी अमर दास जी द्वारा तैयार किया हुआ करने लगा और आगे बढ़ते हुए आध्यात्मिक विचारों का आदान-प्रदान करते हुए बासरके गाँव पहुँच गये। वैष्णव साधु को अमर दास जी ने अपने घर पर विश्राम करने का आग्रह किया तो उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया। अमरदास जी के घर, उनके गंगा यात्रा से वापिस लौटने का समाचार पाते ही सभी सम्बन्धी इकट्ठे हुए और आदर से अभिनंदन करने लगे और उन्होंने अमर दास जी तथा अतिथि वैष्णव साधु का भव्य स्वागत किया।

अमर दास जी की पत्नी श्री मति मन्सा देवी जी ने अतिथि वैष्णवसाधु के विश्राम का विशेष प्रबन्ध कर दिया। परन्तु रात्री के भोजन पर जब अमर दास जी वैष्णव साधु के संग भोजन करने लगे तो उसने सहजभाव से अमर दास जी से पूछ लिया, ''आप का आध्यात्मिक गुरू कौन है ? क्योंकि आपकी दिन चर्या और रहन-सहन अति-उत्तम है।" यह प्रश्न सुनकर अमर दास जी बहुत गम्भीर मुद्रा में चले गये और गहरा श्वास लेते हुए उन्होंने कहा, ''मैं किसी पूर्ण पुरूष की खोज में हूँ किन्तु अभी तक मुझे कोई महान पुरूष मिला ही नहीं।" यह वाक्य सुनते ही वैष्णव साधु बौखला उठा और कहने लगा, ''मेरा सर्वनाश हो गया। मुझे क्या पता था कि आप निगुरे प्राणी हैं। मैंने आपके हाथों से तैयार भोजन किया है इसलिए मेरे सारे पुण्य कर्म व्यर्थ चले गये। निगुरे व्यक्ति का नाम भी लेना बुरा होता है। अब मुझे इसके लिए प्राश्चित करना होगा।" इस प्रकार वह भोजन किये बिना जल्दी से उठ और छटपटाते हुए तुरन्त चला गया।

इस व्यंग से अमर दास जी के हृदय पर गहरा आघात हुआ। वह अपने आपको कोसने लगे कि वास्तव में मैंने जीवन के अमुल्य वर्ष कड़ी साधना करने पर ही खो दिए हैं अत: वह बेचैन हो गये। इस परेशानी में भोजन करना भी भूल गये। तभी आपकी सुयोग्य पत्नी मनसा दवी जी ने आपको सांत्वना दी और कहा, ''यह साधू सरफिरा है। कभी कोई शुभ कर्म व्यर्थ नहीं जाता, मैं यह तो मानती हूँ कि पूर्ण गुरू की आवश्यकता है क्योंकि उनसे आत्मज्ञान प्राप्त होता हैं जिसे व्यक्ति पारब्रह्म में अभेद होने का मार्ग जान जाता है परन्तु पूर्ण गुरू की खोज में देर-सवेर हो सकती है। यदि यह साधु सरफिरा न होता तो आपकी समस्या का कोई समाधान बतलाता और आपका मार्गदर्शन करते हुए किसी पूर्ण पुरूष के विषय में जानकारी देता।" अमरदास जी पर उस समय इन बातों का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। वह बेचैन हो गए और सोने का प्रयास करने लगे किन्तु उनकी आखों मे नींद कहाँ ? वह विचारने लगे कि शायद साधू ठीक कहता है इसीलिए मेरी साधना अभी तक फलीभूत नहीं हुई क्योंकि मैं निगुरा प्राणी हूँ । मैं इसी लिए तत्त्व ज्ञान से वंचित हूँ । क्योंकि मुझे गुरू की कृपा के पात्र बनाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ जब मुझे गुरू प्रसादि प्राप्त हो जायेगी तभी मेरी आत्मिक शुद्धि हो सकती है । बस, इन्हीं विचारों में अमृत बेला का समय हो गया और उन को अपने छोटे भाई माणक चन्द के घर से किसी नारी स्वर में मधुर कंठ से गाने की आवाज सुनाई देने लगी । यह स्वर उन को पहले भी कई बार सुनाई दिया था परन्तु उन्होंने इस ओर कभी विशेष ध्यान ही नहीं दिया था । आज बेचैनी की दशा में मधुर स्वर मन को भाने लगा अत: वह जल्दी से बिस्तर से उठे और आवाज की दिशा में जाकर निकट होकर रचना के बोल सुनने लगे ।

उस समय महिला उच्चारण कर रही थी -

करणी कागदु मनु मसवाणी, बुरा भला दुइ लेख पए ।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे ।
चित चेतसि की नहीं बावरिआ, हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।। रहाउ।।
जाली रैनि जालु दिनु हुआ, जेती घड़ी फाही तेती ।
रसि रसि चोग चुगाहे नित फासहि, छूटसि मूड़े कवन गुणी ।
काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि, मन जलिआ संनीचिंत भई ।
भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै, जे गुरु मिलै तिनेहा ।
एकु नामु अम्रितु ओह देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा ।

(पृष्ठ ९९०)

अमर दास जी का हृदय वैष्णव साधू के कटाक्ष की पीड़ा से द्रवित होकर किसी अज्ञात आध्यात्मिक ज्ञान के लिए भटक रहा था । वह सावधान हुए और रचना के भाव को समझने लगे। इस रचना की अन्तिम पंक्तियों ने उन के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ा

दी । पँक्तियाँ स्थानिक भाषा पँजाबी में थी इस लिए उनको समझने में एक क्षण भी न लगा । पँक्तियों में कहा गया था यदि पूर्ण गुरू से भेंट हो जाए तो वह अमृत रूपी नाम का दान देता है । जिससे जले हुए लोहे जैसा हृदय भी फिर से सोना बन कर निखर आता है । बस फिर क्या था, सूर्य उदय होने पर अमर दास जी अपने छोटे भाई के घर पहुँचे और भाभी से विनती करने लगे मुझे बहु से मिलाओ वह जो प्रात:काल रचनाएं मधुर स्वर में गाती अथवा पढ़ती है वह मैं पुन: उससे सुनना चाहता हूँ । भाभी ने अमर दास जी का हार्दिक स्वागत किया और उन के आग्रह पर बहु अमरो को बुला लिया और कहा, ''बेटी तेरे पितामय ससुर जी तुझ से कुछ पूछना चाहते हैं अथवा वही भजन सुनना चाहते हैं जो तू सुबह दही मथने के समय गाती है।'' बहु अमरो लजा गई परन्तु सास के प्यार से समझाने पर वह अमर दास जी के पास आई और चरणवन्दना कर उन के निकट बैठ गई । तब अमर दास जी ने उसके शीश पर हाथ रख कर उसे आशीष दी और पूछा, ''बेटी जो तुमने सुबह रचना पढ़ी थी वह किस महापुरूष की है ?'' उत्तर में बहु अमरो ने बताया कि यह रचना श्री गुरू नानक देव जी की है । इस रचना को मेरे पिता जी ने एक बार एक सिख भाई जोधा जी के मुखारबिन्द से सुनी थी । वह इस से इतने प्रभावित हुए थे कि गुरू दर्शनों के लिए करतारपुर चले गये थे और उन्होंने बाबा नानक देव जी को अपना गुरू धारण किया और उनसे गुरू दीक्षा लेकर वहीं कई वर्ष उन की छतर-छाया में सेवा करते हुए भजन-बंदगी का अभ्यास करते रहे ।

अमर दास जी यह सुनकर बोले, ''बेटी मैंने भी गुरू बाबा नानक जी का नाम आध्यात्मिक दुनिया में कई बार सुना है परन्तु मन में न जाने क्यों नहीं विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उनके दर्शन करने जाऊँ । खैर ...... देर सही, मैं आज ही उन के दर्शनों को जाने की तैयारी करता हूँ। इस पर बहु अमरो कहने लगी, ''पिता जी उनका तो निधन हो चुका है। उनके स्थान पर उनके उत्तराधिकारी के रूप में मेरे पिता, श्री अंगद देव जी के रूप में विराजमान हैं।'' यह सुनते ही अमर दास जी को एक झटका लगा और विचारने लगे मैं जानता तो था कि भाई लहणा किसी गुरू से दीक्षा लेकर स्वयँ गुरू बन गया है परन्तु मुझे यह मालूम नहीं हो सका था कि वह पूर्ण गुरू नानक देव जी का शिष्य रह चुका है । खैर .... मैं अब उस के पास कैसे जा सकता हूँ क्योंकि वह मेरे छोटे भाई माणक चन्द के समधी हैं। दुनियादारी में रिश्ते-नातों का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा । उनके मन में फिर विचार आया अगर मैं दुनियादारी के चक्रव्यूह में फँस गया तो मेरा बाकी का जीवन भी नष्ट हो जाएगा और समय हाथ से निकल जाएगा । फिर इस तन का भी क्या भरोसा कि कब साथ छोड़ जाये । अत: जल्दी ही मुझे कोई उचित निर्णय ले लेना चाहिए । बस इसी मन की उथल-पुथल में वह पुन: बोले, ''मैं तेरे पिता जी से मिलना चाहता हूँ अगर तुम मेरे साथ चलो तो शायद बात बनने में सुविधा होगी।'' उत्तर में बहु अमरो ने कहा, ''मैं इन्हीं दिनों अपने मायके से लौटी हूँ। अब इतनी जल्दी वापस कैसे लौटा जा सकता है ?'' अमर दास जी ने यह इन्कार सुनकर कहा, ''तुम ठीक कहती हो । मैं स्वयँ ही चला जाऊँगा परन्तु तेरा मेरे साथ होना और मुझे उनसे मिलाना तथा मेरे मन की दशा उनको बताना यह सब बातें सहज में हो जाती । नहीं तो वह मुझे समधी के बड़े भाई होने के नाते स्वीकार नहीं करेंगे। जिस से मैं उनकी निकटता नहीं पा सकूँगा और रिश्ते-नातों की दीवार बनी रह जाएगी। जब तक रिश्ते-नातों की दीवार नहीं टूटेगी, आत्म-समपर्ण नहीं हो सकता। जब तक आत्म समर्पण नहीं होता, तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति सम्भव ही नहीं। अत: बहु तेरा मेरे साथ होना शुभ रहेगा और मेरे लिए सभी सामाजिक बन्ध न तोड़कर एक सेवक बनने में सहायक सिद्ध हो जाएगा।'' इस पर बहु ने उत्तर दिया, ''मुझे तो वापस जाने में आपत्ति नहीं है, केवल माता जी (सासू माँ) की आज्ञा चाहिए।'' यह सब विचारविमर्श सुनकर अमर दास जी की छोटी भाभी ने कहा, ''यदि आपको बहु के साथ की आवश्यकता अनुभव होती है और आप के कार्य की सिद्धि में अगर यह सहायक हो सकती है तो मुझे तो बहुत खुशी होगी। आप इसे साथ में ले जा सकते हैं।''

इस प्रकार अमर दास जी बासरके से खडूर नगर पहुँच गये। जब अमर दास जी गुरू अंगद देव जी के दरबार में उपस्थित हुए तो गुरू देव उन के सम्मान में खड़े हो गये और बोले, ''आपने संदेश भेजा होता । हम आपको लेने आते और आप के स्वागत के लिए तैयार रहते।'' उत्तर में अमर दास जी ने कहा, ''मैं अब आप से समधी के नाते मिलने नहीं आया। मुझ पर आप कृपा करो मुझे अपने शिष्य रूप में स्वीकार कर ले और वह गुरू चरणों में दण्डवत प्रणाम करने लगे । इस पर गुरूदेव जी ने उन्हें उठाकर अपने कंठ से लगा लिया और कहा, ''आपने बहुत सी तीर्थ यात्राएं की हैं परन्तु अब आप को आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए आन्तरिक यात्रा करनी होगी जो कि बाहरी कर्मकाण्डों से नहीं बल्कि शाश्वत जीवन जीने से प्रारम्भ होगी।'' उत्तर में अमर दास जी ने कहा, ''जैसी आप की आज्ञा होगी मैं उसी प्रकार का आचरण करने का प्रयास करूँगा।'' बस फिर क्या था ? अमर दास जी दिन रात सेवा में जुट गये। आप लंगर के लिए ईंधन लाते तथा संगत के जूठे बर्तन साफ करते और अवकाश के समय प्रभु भजन में लीन रहते। एक वर्ष व्यतीत हो गया। आप घर नहीं लोटे तो परिवार को चिन्ता हुई। वे लोग आप से मिलने बारसके गाँव से खडूर नगर पहुँचे। उन्होंने आप की कड़ी सेवा भक्ति को नहीं समझा। वे गुरू अंगद देव जी पर गिला-शिकवा करने लगे कि अमर दास जी की वृद्धावस्था है, आप उन से सेवा में कोई साधारण कार्य करवा ले। आयु का ध्यान तो रखना ही चाहिए। परन्तु जब इस बात का अमर दास जी को मालूम हुआ तो उन्होंने गुरू देव से क्षमा याचना करते हुए कहा, ''मेरे परिवार वाले अल्प बुद्धि वाले जीव हैं वे आप की महानता को नहीं जानते। उन के पास वह दृष्टि नहीं है जिस से गुरू शिष्य के सम्बन्ध को समझ सके। कृपया आप उन की अवज्ञा को न चितारे । गुरूदेव, अमरदास जी पर प्रसन्न हुए और उन को एक सिरोपा (एक छोटी पगड़ी) उपहार में दिया तथा साथ ही प्रात:काल (अन्तिम पहर) में उनके स्नान करवाने, सेवा भी सौंप दी। अब अमर दास जी अत्यन्त प्रसन्न रहने लगे। उनको अहसास हो गया कि गुरूदेव उन पर सन्तुष्ट हैं ।

अमर दास जी प्रातकाल 2 बजे उठ जाते और शौच स्नान से निवृत होकर खडूर नगर के बाहर उसी कुएँ पर पहुँच जाते जहाँ गुरू अंगद देव जी गुरू गद्दी प्राप्त होने से पहले प्रतिदिन स्नान किया करते थे। वहाँ पर स्वयँ पहले केशी स्नान करते, तद्पश्चात अपने

गुरूदेव के लिए गागर भर कर लाते और उस ताजे गुनगुने तापमान वाले जल से उन को स्नान करवाते। आप जी स्वच्छता तथा पवित्रता का बहुत ध्यान रखते क्योंकि आप भूतपूर्व सनातनधर्मी होने के नाते इन सँस्कारों को अपने स्वभाव में ढाल चुके थे। अत: आप अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दिन में दो बार पूर्ण स्नान करके लंगर के कार्य में जुट जाते और साथ साथ चिन्तन मनन का भी अभ्यास बनाए रखते। इस प्रकार कड़ी साधना करने पर आप के वचनों में एक विशेष प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो गई। आप के मुख से कभी सहज भाव से भी कोई बात हो जाती तो वह पूर्णत: सत्य में परिवर्तित हो जाती। इसलिए आप सावधान रहते कभी भी बिना सोचे समझे बात नहीं करते। धीरेधीरे आप की आत्मिक अवस्था ऊँची होती गई और निष्ठा से सेवा में सदैव तत्पर रहने लगे। इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा। गुरूदेव जी आप को प्रति वर्ष एक सिरोपा पुरस्कार में देते और सुमरिन करने की युक्ति दृढ़ करवाने के लिए कड़ी साधना करवाते। आप श्वास-श्वास चिन्तन-मनन में लीन रहते हुए कठोर से कठोर सेवा में व्यस्त रहते। कोई भी क्षण व्यर्थ न जाने देते। सुमरिन (नाम) अभ्यास से आप ऋद्धि सिद्धियों के स्वामी बन गये। वह समय भी आ गया जब आप की कल्पना मात्र से सभी कार्य होने लग गये। परन्तु आपने अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखा। कभी भी अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन नहीं किया। आप जानते थे कि ऋद्धि सिद्धि की चमत्कारी शक्तियाँ व्यक्ति को विचलित कर देती है और व्यक्ति अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है। व्यक्ति अभिमानी हो जाता है जो कि वास्तविक साधना के मार्ग में भारी हानि पहुँचाती है। इस प्रकार व्यक्ति प्रभु में अभेद होने का मूल लक्ष्य खो देता है।

योगी शिव नाथ

खडूर नगर में लम्बे समय से एक योगी रहता था। जिस का नाम शिवनाथ था। लोग इस को भी तपस्वी जान कर अनाज दूध इत्यादि आवश्यकता की वस्तुएँ भेंट में दे जाते थे। इस प्रकार इस का भी गुजर-बसर चल रहा था किन्तु गुरू अंगद देव जी के खडूर में लौट कर प्रकट होने पर उसकी आय में बाधा उत्पन्न हो गई थी । इस प्रकार कह सकते हैं कि वह गुरूदेव के बढ़ते हुए प्रताप से ईर्ष्या करने लगा। किन्तु उसके बस में कुछ था नहीं। अत: वह सदैव गुरूदेव की निन्दा करता रहता और कहता हम तो त्यागी पुरूष हैं परन्तु अंगद गुहस्थी है और पूजा करवाता है, इत्यादि। गुरूदेव, श्री गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करते रहते। जिस अनुसार वह अपने प्रवचनों में संगत को सम्बोधन करते हुए कहते कि समस्त मानव जाति का कल्याण आपस में प्रेम करने में है। केवल प्रेम भक्ति ही हमें उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परब्रह्म परमेश्वर के निकट ला सकती है। अन्यथा कर्मकाण्ड सदैव प्रभु मिलने में बाधक ही रहेंगे क्योंकि इन में अहं भाव उत्पन्न होता है जो हमारे कार्यो को फलीभूत नहीं होने देता। इस प्रकार गुरूदेव जन-साधारण को समझाते कि हमें प्रभु के ऊपर पूर्ण आस्था रखनी चाहिए कि वह हर समय हमारा भला ही करता है क्योंकि वह हमारा पिता है। हमें सदैव सन्तुष्ट रहना चाहिए।

खडूर नगर में जन जीवन सामान्य रूप से चल रहा था। गुरू देव के सेवक अमर दास जी अपने घरेलू कार्यवश कुछ दिन की छुट्टी लेकर अपने गांव बासरके चले गये। उन्हीं दिनों वर्षा के अभाव से किसानों की खेतीबाड़ी में बाधा उत्पन्न हो गई। वे वर्षा के लिए मिल कर गुरूदेव के समक्ष निवेदन करने लगे। गुरूदेव ने गुरमति अनुसार उन को धैर्य बंधाया और कहा कि प्रभु हमारा पिता है वह हमारी आवश्यकताओं को जानता है। वह हमारे लिए भला ही करेगा। हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु कुछ किसान ब्रह्मज्ञान के पाठ को समझने वाले नहीं थे। उनको तो वर्षा चाहिए। अत: वह योगी शिव नाथ के पास चले गये और वहाँ भी वर्षा चाहिए की बात दोहराने लगे। इस पर योगी ने कहा, ''तुम लोगों को अब अक्ल आई है, त्यागियों को छोड़ कर गृहस्थियों की पूजा करते हो । इसीलिए यह प्राकृतिक प्रकोप हुआ है । अब तुम सूखे से मरोगे । कुछ किसान उसके पाँव पड़ गये कि महाराज कुछ तो करो । उत्तर में योगी ने कहा, ''मैं वर्षा करवा सकता हूँ। यदि तुम गुरू अंगद को खडूर नगर को छोड़ने पर विवश कर दो।'' इस पर किसान गुरूदेव के पास आये और निवेदन करने लगे कि योगी वर्षा करवाने का दावा करता है। उसकी केवल एक शर्त है कि आप खडूर नगर छोड़ कर कहीं और जा बसें। यह सुनकर गुरूदेव ने कहा हमें तो खुशी होगी अगर वह वर्षा करवाने में सफल हो जाता है और उन्होंने सेवकों को आदेश दिया कि तुरन्त यह नगर त्याग कर इसी क्षण दूसरे नगर चले चलो और गुरूदेव ने नगर त्याग दिया। किसानों ने योगी को सूचना दी कि गुरूदेव खडूर नगर त्याग कर कहीं चले गये हैं किन्तु योगी सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह कहने लगा कि उनको लगभग 25-30 कोस दूर जाने को कहे जिससे उनकी लौटने की सम्भावना न रहे । किसानों ने ऐसा ही किया और योगी से कहा, ''अब तुरन्त वर्षा करवा दे।'' उत्तर में योगी कहने लगा, ''मैं सभी प्रकार के तंत्र-मंत्र कर रहा हूँ, जल्दी ही मेरा वर्षा वाला मंत्र फलीभूत होकर रंग दिखाएगा। आप इस अनुष्ठान में भाग ले और मेरी सहायता करे।'' इस प्रकार बहानेबाजी में तीन चार दिन और व्यतीत हो गये। तभी श्री अमर दास जी अपने गांव बासरके से लौट आये। उन्होंने पाया कि गुरू दरबार खाली पड़ा हुआ है और संगत तथा गुरूदेव कहीं दिखाई नहीं देते। पूछने पर मालूम हुआ कि यह सब कार्य ईर्ष्यालु शिवनाथ योगी का है तो उन को अपने गुरूदेव का अपमान सहन नहीं हुआ। वह किसानों के भोलेपन पर बहुत खिन्न हुए। उन्होंने तुरन्त किसानों को कहा, ''जाओ योगी से कहे कि वह जल्दी से वर्षा करवा दे नहीं तो हम वर्षा करवाने का उपचार बता देंगे ।'' किसान संकेत पाते ही योगी पर दबाव डालने लगे कि वर्षा अपने वायदे अनुसार करवा दें नहीं तो तुम अपने मठ (आश्रम) से बाहर निकलो । योगी ढोंगी था अत: वह अटकलबाजी करने लगा । इस पर श्री अमर दास जी ने कहा, ''इस पापी ने गुरूदेव को खडूर त्यागने का षड्यन्त्र रचा था । अब तुम लोग इसे, जैसे ही मठ से बाहर घसीटोगे वर्षा तुरन्त प्रारम्भ हो जाएगी

और जैसे ही नगर के बाहर भगा देंगे, वर्षा की कहीं कमी नहीं रहेगी।" किसानों ने ऐसा ही किया। योगी को बलपूर्वक जैसे मठ से बाहर लाये वर्षा प्रारम्भ हो गई। किन्तु उसे नगर के बाहर भगाने के चक्र में योगी किसानों द्वारा बलपूर्वक घसीटने से मारा गया। वर्षा की इच्छा सम्पूर्ण होने पर किसान श्री अमर दास जी के साथ गुरू देव को वापस बुलाने तथा अपनी भूल की क्षमा याचना करने खान रजादे की जूह नामक गाँव में पहुँच गए। उन दिनों गुरूदेव यहीं गुरूमति का प्रचार कर रहे थे। अमर दास जी को देख कर श्री गुरू अंगदे देव जी ने उन की ओर पीठ कर दी और दर्शन नहीं दिये। जब अमर दास जी दूसरी तरफ जाकर उनकी चरण वंदना करने लगे तो फिर उन्होंने चरण स्पर्श नहीं करने दिये और मुँह दूसरी दिशा की ओर कर लिया । इस पर अमर दास जी ने अपनी भूल के लिए अपने गले में सफेद कपड़ा डाल कर दोनों हाथ जोड़कर तद्पश्चात नतमस्तक हो, क्षमा याचना की और कहा, ''मुझे क्षमा करें । मैं अज्ञानी पग-पग भूलें करता हूँ । आप कृपालु हैं, दयालु हैं, इस दास के अवगुणों पर ध्यान न दें।" गुरू देव ने अमर दास जी को कहा, ''योगी प्रतिष्ठा तथा माया का भूखा था, उसकी रोजी-रोटी का प्रश्न था परन्तु आपने उसकी हत्या करवा दी और प्रकृति के कार्यो में हस्तक्षेप करके आत्म शक्ति का प्रकटावा किया जो कि आत्मिक उन्नति में बहुत बड़ी बाधा डालती है। खडूर के किसानों ने भी क्षमा याचना की और प्रार्थना की कि आप अपने नगर खडूर लौट आयें। गुरूदेव ने वापसी का कार्यक्रम बनाया और खडूर पहुँच गये।

गोइन्दवाल बसाना

श्री गुरू अंगद देव जी के दरबार में एक समृद्ध जमींदार गोइन्दा हाजिर हुआ और उसने गुरूदेव के चरणों में प्रार्थना की कि मेरे पास व्यास नदी के तट के उस पार शाही सड़क के दोनों ओर बहुत भूमि है । मैं उसे कई वर्षो से बसाने का प्रयन्त कर रहा हूँ, परन्तु कभी बाढ़ और कभी सूखा इत्यादि प्राकृतिक विपदा के कारण बसा नहीं पाया । भूमि उपजाऊ है । अत: मेरे चचेरे भाईयों ने उस पर अवैध कब्जा कर लिया था । अब लम्बे समय की मुकद्दमेबाजी के पश्चात मैं पुन उस भूमि का पट्टा प्राप्त करने में सफल हो गया हूँ । इन दिनों भी मैंने बहुत प्रयास किये हैं कि नगर बस जाए परन्तु मेरे प्रतिद्वन्द्वी ईर्ष्यावश दिन का निर्माण कार्य, राते के अंधकार में विनाश में बदल देते हैं और श्रमिकों में अफवाह फैलाते हैं कि यह स्थान भारी है, इस स्थान पर प्रेत आत्माएं रहती हैं । अत: कई श्रमिक भय के कारण काम छोड़ कर भाग गये हैं । यदि आप मेरी सहायता करे तो यह स्थान बस जाने से यहाँ के स्थानीय निवासियों को बहुत लाभ होगा क्योंकि यहाँ व्यास नदी के पतन पर यात्रियों का आवागमन सदैव बना ही रहता है । अत: वहां पर एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र बनने की सम्भावना है ।

भाई गोइन्दे की पवित्र भावना को देखकर दूरदृष्टि के स्वामी गुरू अंगद देव जी ने उसे सांत्वना दी और कहा, ''हम आप की सहायता करेंगे" और उन्होंने अपने परम सेवक श्री अमर दास जी को आदेश दिया और कहा, ''आप भाई गोइन्दा जी के साथ जाओ और गुरू नानक देव जी की ओट लेकर नगर की आधारशिला रखो। प्रभु ने चाहा तो सब कार्यो में सिद्धि मिलेगी।"

आदेश पाते ही श्री अमर दास जी गोइन्दे की भूमि पर पहुँचे। जो कि खडूर नगर से 3 कोस दूर व्यास नदी के पश्चिमी तट पर स्थित थी। वहाँ पर पहुँचते ही अमर दास जी ने एक प्रार्थना समारोह का आयोजन किया। जिसमें विरोधी पक्ष को भी आमन्त्रित किया गया और नगर की आधारशिला एक श्रमिक से गुरू की ओट लेकर रखवा दी गई। इस प्रकार निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। इस समारोह से विरोधी पक्ष का भी मनमुटाव मिट गया। जिससे उन्होंने भी सहयोग देना आरम्भ कर दिया गया। देखते ही देखते कुछ ही दिनों में एक छोटे से नगर की रूप रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। नगर के अस्तित्त्व में आने से भाई गोइन्दा अति प्रसन्न हुआ । उसने कुछ भूमि गुरू नानकदेव जी की शिक्षा के प्रसार के लिए सुरक्षित रख दी और अमर दास जी के लिए एक विशेष हवेली का निर्माण करवाया। जो कि अति सुन्दर और अति आधुनिक थी। हवेली के सम्पूर्ण होने की सूचना पाते ही गुरू अंगद देव जी ने अमर दास जी को आदेश दिया कि आप बासरके गाँव से अपना परिवार भाई गोइन्दे की नगरी में ले आयें और वहाँ बस जायें। आदेश पाते ही अमर दास जी ने ऐसा ही किया परन्तु जब वह हवेली में प्रवेश करने लगे तो उन्होंने पाया कि यह हवेली मेरे गुरू के निवास स्थान से कहीं उत्तम है। अत: उन्होंने उस में प्रवेश करने से इन्कार कर दिया और कहा, ''मैं तो एक अदना सा सेवक हूँ। मेरा निवास स्थान गुरू के निवास से उत्तम नहीं होना चाहिए।" बस फिर क्या था देखते ही देखते हवेली को आग लग गई। कर्मचारियों ने बहुत प्रयास किया कि आग बुझाने में सफलता मिल जाए परन्तु सब असफल रहा। इस पर अमर दास जी एक छोटा सा साधारण चुबारा बनवा कर उसमें रहने लगे। परन्तु अमर दास जी को अपने गुरू का वियोग असहय था। वह विरहा में छटपटाने लगे। उन को न रात में चैन न दिन में भूख, वह हृदय की बेदना को छिपा नहीं पाये। उनके नेत्र द्रवित हो कर बार बार छलक जाते। ऐसे में उन्होंने एक युक्ति खोज निकाली। वह अर्ध रात्रि को चन्द्रमा के धुन्धले प्रकाश में व्यास नदी पर स्नान करके, वहीं से घर पर न लोट कर गागर भर के अपने प्रियतम को स्नान कराने खडूर नगर चल पड़ते। उधर गुरू अंगद देव जी भी उनके मनोवेग को अनुभव कर रहे थे और वे भी प्रेम के वशीभूत अपने भक्त की पीड़ा का अहसास करके अशान्त थे। अत: वह इस मिलन पर सन्तोष व्यक्त कर उन्हें सेवा से वंचित नहीं करना चाहते थे। अत: यह कर्म लम्बे समय तक चलता रहा। अमर दास जी गुरूदेव को स्नान करवाने के बहाने उपस्थित हो जाते और सारा दिन लंगर की सेवा करके संध्या को वापस गोइन्दे की नगरी चले जाते। धीरे धीरे भाई गोइन्दे की नगरी बहुत विकसित हो गई तथा इस नगर का नाम गोइन्दे की नगरी से गोइन्दवाल हो गया।

एक बार प्रात:काल अमर दास जी गुरूदेव को स्नान कराने गागर भर कर जल ला रहे थे तो वर्षा ऋतु और अंधकार के कारण वह गुरूदेव के घर के निकट एक जुलाहे की खड्डी से टकरा गये जिस पर जुलाहे ने आहट सुनकर कहा, ''इस समय बाहर कौन हो सकता है ?" जुलाही ने तुरन्त उत्तर दिया, ''वही अमरू निथावां (बेघर) होगा जो समधी के यहाँ पानी ढोता रहता है। जब यह व्यंग अमर दास जी ने सुना तो उनके मुख से सहज भाव से निकला, ''कमलीये मैं पहले तो अवश्य ही नहीं निथाव था परन्तु अब तो मैं गुरू वाला हूँ। अब मैं निथावा (बेघर) कैसे हो सकता हूँ।" अमर दास जी के मुखारबिन्द से यह वाक्य निकलना ही था कि जुलाही उसी क्षण कमली अर्थात पगली हो गई। वह मारपीट करने लगी। जुलाहे ने लोगों की सहायता से उसे बाँधा और क्षमा याचना के लिए गुरू दरबार में उपस्थित हुआ। दूसरी ओर जब अमर दास जी जल की गागर लेकर गुरूदेव को स्नान करवाने पहुँचे तो वह स्नान कर चुके थे। उन्होंने वही जल लेकर उल्टे अमर दास जी को स्नान करवाया क्योंकि वह गिरने से कीचड़ में सन्न चुके थे। फिर उनको दरबार में ले आये और अपने आसन (गुरू गद्दी) पर बिठा दिया और बारह वरदान दिये।

तुम तो निथावन थान, करहो निमानहि मान ।
नितानिआं दा तान, निओटिआं दी ओट ।
निआसरिआं दा आसरा । नधिरिआं दी धर ।
निधीरन दी धीर, पीरां दे पीर ।
दिआल गही बहोड़, जगत बंदी छोड़ ।
भंनण घड़ण समरथ, सभ जीवका जिस हथ ।

तब अपने गुरू भाई बाबा बुड्डा जी को बुला कर उनके कर कमलों से विधिवत् सभी औपचारिकताएं पूरी करवा करके अमर दास जी को तीसरा गुरू नानक घोषित कर के स्वयँ उनके चरण में नतमस्तक हो कर दण्डवत प्रणाम किया और संगत को भी ऐसा ही करने का आदेश दिया। इस प्रकार अमर दास जी गुरू नानक देव जी के दूसरे उत्तराधिकारी बना दिये गये। जब गुरू अंगद देव जी के सुपुत्रों को मालूम हुआ कि गुरू गद्दी का उत्तरदायित्व अमर दास जी को सौंप दिया गया है तो वे बहुत खिन्न हुए। वास्तव में वह चाहते थे कि उन में से किसी एक को पिता गुरूदेव अपना उत्तराधिकारी घोषित करते। अत: वह गुरू अमर दास जी के चरणों पर नहीं झुके। यह सब कुछ देखकर गुरू अंगद देव जी ने अपने पुत्रों दातु जी तथा दासू जी को बहुत समझाया कि गुरू गद्दी का उत्तरदायित्व बहुत कठिन है, यह सब विरासत की वस्तु नहीं है। यह तो अलौकिक उपहार है, जो कि किसी पराकर्मी पुरूष के लिए सुरक्षित होती है । परन्तु यह ज्ञान उनकी समझ में आने वाला नहीं था । अत: वह ईर्ष्या करने लगे । इस पर गुरू अंगद देव जी ने गुरू अमर दास जी को आदेश दिया कि आपने गोइन्दवाल ही रहना है और वहीं गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करना है और उसी समय उन्होंने वह समस्त गुरू वाणी का भण्डार जो गुरू नानक देव जी द्वारा उनको दिया गया था, अब गुरू अमर दास जी को सौंप दिया गया ।

बाउली ;जलकुण्डद्ध का निर्माण कार्य

श्री गुरू अमर दास जी के प्रयासों से भाई गोइन्दे की नगरी, गोइन्दवाल के रूप में बहुत विकास करती जा रही थी । जिस कारण जनसंख्या में धीरे धीरे वृद्धि होती जा रही थी । यह स्थान प्राकृतिक दृष्टि से एक विशाल चट्‌टान पर बसाया जा रहा था । यहाँ पर व्यासा नदी इस विशाल पठारी भूमि से टकरा कर दिशा परिवर्तन करके बहती है । अत: नई बसाई गई नगरी के लिए पीने के पानी की व्यवस्था में बहुत कठिनाईयाँ सामने आने लगी । पूरे नगर में एक ही कुआँ था जो कि आदि काल का बना हुआ था। जिस के निर्माण का समय किसी को ज्ञात नहीं था। दूसरे कुएँ खोदने के बहुत प्रयास किये गये जो कि असफल सिद्ध हुए क्योंकि बहुत गहरी खुदाई करने पर भी पानी नहीं निकलता था बल्कि सख्त चट्‌टाने निकलती थी। जिन को खोदना मुश्किल ही नहीं असम्भव बात थी । अत: एक कुएँ होने के कारण वहाँ सदैव भीड़ बनी रहती और पानी के लिए लम्बी कतारें लगने लगी। जिससे अमूल्य समय नष्ट होने लगा । स्वाभाविक ही था पानी को लेकर कई बार झगड़े होने लगे और जन साधारण पानी को लेकर पीड़ित रहने लगे। वैसे तो व्यासा नदी निकट होने के कारण नहाना, कपड़े धोना इत्यादि हो जाता परन्तु रसोई घर के लिए पानी की कमी बनी रहती । विशेष कर गुरू के लंगर के लिए पीने के पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती । बहुत से निष्काम सेवक सिख, कुएँ से पानी ढोने की सेवा में दिन रात व्यस्त रहते परन्तु दूसरा पक्ष भाई गोइन्दे के निकटवर्ती पानी को लेकर सिखों से उलझ पड़ते । उनका कहना होता इस कुएँ पर हमारा अधिकार है । आप लोग अपने लिए नया कुँआ निर्माण कर लें, बात तो ठीक थी परन्तु कुआँ खोदना इतना सहज नहीं था । अत: पानी के लिए प्राय: मनमुटाव हो जाता । भाई गोइन्दे के देहान्त के पश्चात उस के परिवार के सदस्य का एक धड़ा (गुट) बन गया जो सिखों से अभद्र व्यवहार करता और व्यंगपूर्ण शब्दों में कहता - तुमने हमने भूमि भी दी है और अब कम से कम पानी का प्रबन्ध स्वयं कर लें । अत: क्रोध में कई सिखों के घड़े फोड़ देते । यह सब कुछ सुनकर गुरू अमर दास जी सिक्खों को धैर्य रखने को कहते और उनको घड़ों के स्थान पर गागरों से पानी ढोने को कह दिया । परन्तु सब व्यर्थ झगड़ा ज्यों का त्यों बना रहा । इस प्रकार गुरूदेव ने एक दिन एक सुन्दर स्थान चुनकर एक विशाल बाउली निर्माण के लिए गुरू चरणों में संयुक्त रूप में प्रार्थना (अरदास) करके आधारशिला रख दी । बाउली का निर्माण कार्य समान रूप से चलने लगा। गुरू घर में (कार सेवा) निर्माण कार्य चल रहा है, यह जानकर संगत दूर दूर से आने लगी और विशाल कार्य

जो वर्षो का था कुछ ही दिनों में ही कर दिया परन्तु समस्या वही सामने आई । जिस का पहले से ही भय था, बाउली के अन्तिम पड़ाव में विशाल चट्टान नीचे आ गई जो कि साधारण पत्थर से कहीं सख्त थी । अत: खुदी के कार्य में बाधा उत्पन्न हो गई । इस पर गुरूदेव ने पत्थर काटने वाले कारीगर बुला लिए और वे लोग कार्य करने लगे परन्तु चट्टान बहुत कडी थी । इसलिए काम बहुत धीमी गति से आगे बढ़ने लगा । यह कार्य सरल तो था नहीं, इस पर वर्षो लग सकते थे क्योंकि चट्टान कितनी गहराई तक फैली हुई है इस का अनुमान लगाना कठिन ही नहीं असम्भव था, तो भी सिक्खों ने गुरू ओट ले कर पूर्ण विश्वास के साथ दिन रात चट्टान काटने का कार्य जारी रखा । उन्हीं दिनों सम्राट अकबर के मंत्री राजा टोडरमल गुरू दरबार में गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुए और विनम्रतापूर्वक निवेदन करने लगे कि हमें चितौड़गढ़ किले पर विजय प्राप्त करने में बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है । यदि आप हमें विजय के लिए आर्शीवाद दे तो यह काम हो सकता है । गुरूदेव के मुख से सहज भाव में शब्द निकला - बाउली में पानी भरने पर ही विजय होगी । बस फिर क्या था, राजा टोडरमल ने इन शब्दों को विजय के लिए भविष्यवाणी मान कर बाउली निर्माण के काम में रूची लेनी प्रारम्भ कर दी । टोडरमल ने अनुभव किया कि यदि चट्टान को विस्फोटक पदार्थो से (बारूदी सुरंग लगा कर) उड़ाया जाये तो यह कार्य बहुत सरलता से हो सकता है । उसने तुरन्त बारूद तथा कुशल कारीगरों की व्यवस्था की, जिस से निर्माण कार्य में क्रान्तिकारी प्रगति हो गई । चट्टान कई फीट गहरी काट ली गई । अन्त में नीचे कुछ पानी की बूंदे दिखाई देने लगी जो कि चट्टान की दरारों से रिस कर आ रही थी बस फिर क्या था, सिक्खों के मन में एक खुशी की लहर दौड़ गई क्योंकि अब सभी को अपने कड़े परिश्रम का फल मिलने की आशा बन्ध गई थी, परन्तु चट्टान का कड़ टूटने का नाम ही नहीं ले रहा था । अत: गुरूदेव ने अपने एक परमस्नेही सिक्ख माणक चन्द को घन (बड़ा हथौड़ा) देकर भेजा कि अब शेष कार्य तेरा ही रह गया है और वह चट्टान की दरारों पर घन से प्रहार करने लगा । अन्त में एक भारी झटके से चट्टान का अन्तिम कड़ टूटा, जिससे नीचे का पानी बहुत भारी दबाव से बाउली में भर गया। यकायक तीव्र गति के वेग को माणक चन्द जी सहन नहीं कर पाये, वह बाउली के पानी में ही डूब गये, तुरन्त उन को बचाने के प्रयास किये गये, जिससे उनको अचेत अवस्था में बाहर निकाल लिया गया । फिर उनको एक घड़े पर औंदा डाल कर उनके मुख से पानी निकाला गया, जिससे वह पुन: स्वस्थ हो गये । इस प्रकार बहुत कड़े प्रयासों के पश्चात बाउली पानी से लबालब भर गई । राजा टोडरमल ने बाउली के 'कड़' टूटने का समय, तिथि इत्यादि लिख लिए । जब वह वापस पहुँचा तो उसने पाया कि चितौड़ गढ़ के किले पर फतेह प्राप्त करने का समय भी वही था ।

भाई सावण मल जी

(श्री गुरू) अमर दास जी ने जैसे ही गोइन्दवाल की आधारशिला रखी । जनसाधारण में पूर्ण रूप में विश्वास उत्पन्न हो गया कि अब भाई गोइन्द की नगरी बसने में किसी प्रकार की अड़चन अथवा विघ्न, बाधा नहीं हो सकती क्योंकि जगद गुरू बाबा नानक जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू अंगद देव जी के आदेश पर यह नगर बसाया जा रहा है । अत: लोगों के मन में आकर्षण उत्पन्न हुआ और वह धीरे धीरे यहाँ आकर बसने लगे । वैसे भी यहाँ बसना हितकर था क्योंकि शाही सड़क पर स्थित होने के कारण सभी प्रकार की व्यापारिक तथा आवागमन की सुविधाएं उपलब्ध होती थी । जैसे जैसे नगर की जनसंख्या बढ़ती गई इमारती लकड़ी की कमी अनुभव होने लगी । जब अमर दास जी को गुरू गद्दी प्राप्त हुई तो उनके स्थाई रूप से वहीं रहने के कारण जनसंख्या का दबाव और तेजी से बढ़ने लगा । इसलिए कुछ श्रद्धालुओं ने गुरू देव से निवेदन किया कि गुरू जी हम यहीं आप के निकट बसना चाहते हैं, परन्तु यहाँ इमारती लकड़ी उपलब्ध नहीं । अत: मकान इत्यादि निर्माण के लिए बहुत कठिनाईयां पेश आती हैं । गुरू देव ने इस समस्या के समाधान के लिए अपने भतीजे सावण मल को बुला लिया और आदेश दिया कि आप पर्वतीय क्षेत्र हरीपुर जाएं, यह नगर व्यासा नदी के किनारे स्थित है और वहाँ से देवदार की लकड़ी नदी द्वारा जहाँ भेजे । आज्ञा पाते ही सावण मल जी वहाँ जाने को तैयार हो गये परन्तु उन की माता जी गुरूदेव के पास आई और वह अपने दकियानूसी विचारों से ग्रसित कहने लगी कि मेरा पुत्र अनजान है । ज्ञात हुआ है। वहाँ पर नारियाँ पुरूषों पर वशीकरण मंत्र चलाकर कहीं का नहीं रहने देती । उत्तर में गुरुदेव ने उन को सांत्वना दी और कहा - आप का पुत्र समर्थ गुरु नानक देव जी का संदेश वाहक है । वह ही इस के अंग संग रहेंगे किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं । चलते समय सावण मल जी ने गुरूदेव से कुछ धन की आवश्यकता प्रकट की । गुरूदेव ने उन्हें कुछ धन राशि दी और कहा - आप केवल गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का वहाँ प्रचार प्रसार करे - बाकी के काज वह स्वयं ही करेंगे और इस छोटी सी पूंजी में बरकते पड़ती जाएगी । साथ में सहयोगी के रूप में चार अन्य सिक्खों को साथ भेज दिया । सहयोगी सिक्खों को साथ लेकर सावणमल जी हरीपुर पहुँच गये । वहाँ का नरेश कर्मकाण्डों में विश्वास रखता था । अत: वह एकादशी तथा अन्य व्रत इत्यादि पर पूर्ण उपवास रखते थे और वहाँ की जनता को बलपूर्वक उपवास करने के लिए बाध्य किया जाता था । जिन दिनों सावणमल जी वहाँ पहुँचे, उन्हीं दिनों जन्माष्टमी का उत्सव निकट पड़ रहा था । इन लोगों ने गुरू घर की प्रथा अनुसार प्रतिदिन गुरू का लंगर करके जनसाधारण को भोजन करवाना प्रारम्भ कर दिया और गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों अनुसार बिना भेदभाव बिना जाति-पाति अथवा वर्ण आश्रम के एक ही पंक्ति में सभी को बिठा कर बाँट कर खाने की शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी । जिस से वहाँ की स्वर्ण जातियों में हलचल मच गई। वे इन लोगों पर धर्मभ्रष्ट करने का आरोप लगाने लगे । तभी जन्माष्टमी का उपवास का दिन आ गया । नरेश का आदेश था कि सभी जनसमूह उपवास रखेंगे। परन्तु सावण मल तथा उसके सहयोगियों ने गुरू आज्ञा अनुसार गुरू का लंगर तैयार किया और उस दिन ऊँचे स्वर में आवाज लगाकर

कर लोगों को निमन्त्रण देकर भोजन कराया और कहा – यदि कोई भूखा प्यासा है तोगुरू का लंगर तैयार है, भोजन कर लें । बस फिर क्या था कुछ स्वर्ण वर्ण के लोगों ने भाई सावण मल पर उपवास न करने तथा दूसरों का उपवास तुड़वाने का आरोप लगा कर पकड़वा दिया और अपराधी घोषित कर कारावास में डाल दिया । मुकद्दमा चलने परनयाधीश ने पूछा कि आपने स्थानीय नरेश के आदेश का उल्लघंन क्यों किया । इस पर सावण मल जी ने कहा कि प्रभु सभी को रिज़क देता है, छीनता नहीं । आप स्वयँ तो सूर्योदय से पहले भान्ति भान्ति के पकवान और स्वादिष्ट भोजन कर लेते हैं, परन्तु गरीब जनता को भूखे रहने पर विवश करते हैं जो कि प्रभु परमेश्वर की दृष्टि में भारी अपराध है क्योंकि जन साधारण में नन्हें बच्चों वाली माताएँ तथा अबोध बालक भी आते हैं, जिन को समय समय पर उन का आहार मिलना ही चाहिए । प्रभु की दृष्टि में कोई दिन भी अच्छा या बुरा नहीं होता और प्रभु जन्म मरण में नहीं आता है, वह तो अमर है । यह तर्क युक्ति संगत थे । इसलिए न्यायाधीश को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था, अत: निरूत्तर होकर उसने नरेश को सूचित किया और घटना का विवरण दिया । नरेश ने तुरन्त भाई सावण मल जी को अपने दरबार में बुला भेजा । सावण मल जी ने इस शुभ अवसर का लाभ उठाते हुए दरबार में गुरमति सिद्धान्तों की विस्तार से व्याख्या की और कहा – प्रभु सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान है । अत: वह सभी को रोजी (रिज़क) देता है, किसी का रिज़क छीनता नहीं । अत: उस द्वारा बनाये नियमों में कोई अड़चन डालता है तो वह भी अपराधी है क्योंकि उसके नियम सर्वथा सत्य होते हैं । जैसे आपने हमें अपराधी घोषित किया है, उसी प्रकार वह भी आप लोगों कोअपराधी घोषित करेगा । क्योंकि वह रोजी रोटी देता है और आप रोजी रोटी छीनते हैं। नरेश इस टिप्पणी पर गम्भीरता से विचार करने लगा । परन्तु उसने बहुत सोच विचार के पश्चात कहा – उपवास से स्वास्थ्य अच्छा रहता है । उत्तर में सावण मल जी ने कहा – हम गुरू आदेशों से प्रतिदिन व्रत रखते हैं, हमारा व्रत है, अल्प आहार तथा अल्प निद्रा, जिस से व्यक्ति कभी रोगी हो ही नहीं सकता । इस पर नरेश ने पूछा – आप लोगों का गुरू कौन है ? उत्तर में सावण मल जी ने कहा – हम गुरू अमर दास जी के शिष्य हैं, जो गुरू नानक देव जी के दूसरे उत्तराधिकारी हैं । बस फिर क्या था । वह बाबा नानक जी का नाम सुनते ही बदल गया और कहने लगा – नानक देव जी हमारे पूर्वजों के समय यहाँ पर्वतीय क्षेत्रों में आये थे । वह तो दिव्य ज्योति के स्वामी थे । क्या उनका उत्तराधिकारी भी उसी ऊँची आत्मिक अवस्था के स्वामी हैं ? सावण मल जी ने कहा – श्री गुरू अमर दास जी भी पूर्ण गुरू हैं, वह जगत उद्धार के लिए उन्हीं के दर्साए मार्ग पर चल कर विश्व कल्याण हेतु कार्य कर रहे हैं । इस पर नरेश ने अपनी घरेलू समस्या सावण मल जी के समक्ष रखी और कहा – मेरा बेटा लम्बे समय से बीमार है, उसे मिर्गी जैसी कोई बीमारी है, वह अचेत अवस्था में पड़ा रहता है और कभी कभी काँपने लग जाता है । उस का कोई आप के पास उपचार है ? वैसे मैंने सभी प्रकार के इलाज करवा कर देख लिये हैं, कोई भी दवा दारू काम नहीं करता । सावण मल जी ने कहा – हमें उस बालक के पास ले चलो । प्रभु ने चाहा तो बालक कुशल मंगल हो जाएगा । सावण मल जी और उनके साथी सभी नरेश के महल में बालक के पास पहुँचे । उन्होंने सभी परिवार के सदस्यों को एकत्र कर के कहा हम सभी मिल कर संयुक्त रूप में प्रभु चरणों में प्रार्थना करेंगे और उन्होंने अपने साथियों सिक्खों को गुरू देव की आराधना करके प्रभु चरणों में बालक की देह आरोगता के लिए प्रार्थना करने को कहा – प्रर्थना समाप्त होने पर उस बालक को प्रसाद रूप में कड़ाह प्रसाद (हलवा) खिलाया गया और सभी में वितरण किया गया । देखते ही देखते बालक सामान्य रूप में हँसने खेलने लगा ।

इस शुभ समाचार के कारण समस्त हरीपुर नगर में हर्ष उल्लास छा गया। सावण मल जी और अन्य सिक्खों की बहुत मान प्रतिष्ठा होने लगी । नरेश ने सावण मल जी को पूछा – आप का यहाँ पर्वतीय क्षेत्रों में आने का कोई विशेष प्रयोजन था ? उत्तर में सावण मल जी ने बताया कि गोइन्दवाल नगर बसाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता है, वही हम यहाँ से लेने आये हैं । नरेश ने प्रसन्नता में बहुत बड़े पैमाने पर देवदार की छतीरियाँ व्यासा नदी में डलवा दी और तैराक साथ भेज दिये जो कि उनको गोइन्दवाल पहुँचा कर आये । इस प्रकार सावण मल जी का मुख्य उद्देश्य सहज में ही पूर्ण हो गया । वहाँ पर उनकी मान्यता होने लगी। समय उपर्युक्त था । अत: सावण मल जी भी गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने लगे । स्वाभाविक ही था, माया के भी अम्बार लगने लगे । जिस कारण उनका मन वहीं रम गया । अन्य सिक्ख धीरे धीरे लोट गये परन्तु सावण मल जी वापस नहीं लोटे । कुछ दिन प्रतीक्षा करने के पश्चात गुरूदेव जी ने उनको वापस आने का संदेश भेजा । उत्तर में सावण मल जी का संदेश पहुँचा कि यहाँ के नरेश ने आप के दर्शनों के लिए अभिलाषा व्यक्त की है, अत: मैं उनको साथ लेकर आ रहा हूँ और वह हरीपुर के राजपरिवार तथा अन्य अधिकारियों सहित गोइन्दवाल पहुँचे ।

हरीपुर का नरेश गुरू दरबार में

श्री गुरू अमर दास जी की आज्ञा प्राप्त कर के सावण मल जी हरीपुर के नरेश तथा उस के परिवार को साथ लेकर गोइन्दवाल पहुँचे । उन के पहुँचने की सूचना पाते ही गुरूदेव ने आदेश दिया कि सभी राज परिवार को संगत में बिठा कर एक समान भोजन करवा जाये तद्पश्चात सभी महिलाएं बिना श्रृंगार के साधारण वस्त्रों में गुरू दरबार में उपस्थित हो ।

सभी महिलाओं ने गुरू आदेश का पालन किया और गुरूदेव के सम्मुख हाज़िर हुई और बारी बारी शीश झुकर कर नमस्कार करती हुई आगे बढ़ती हुई दरबार में यथा स्थान बैठती गई । परन्तु एक छोटी रानी जो कि नवविवाहिता थी, ने गुरू दरबार में लम्बा घूंघट निकाल कर बड़े अभिनय से शीश झुकाया और नखरा करने लगी । तब गुरूदेव के मुख से सहज भाव से निकला – यह कमली कहाँ

से आ गई है । बस फिर क्या था, वह स्त्री उसी क्षण कमली (पगली) हो गई और कपड़े फाड़ कर जँगल में भाग गई । नरेश ने इस घटना पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की और गुरू दर्शनों के पश्चात अपने नगर लोट गया । समय व्यतीत होने लगा। एक दिन एक सिक्ख लंगर के लिए ईधन लाने घने जँगल में पहुँच गया, वहाँ उसको एक निर्वस्त्र स्त्री ने आ दबोचा और उसे पीट कर, नाखूनों से नोच कर फिर से जँगल में भाग गई । यह घटना सिक्ख ने गुरूदेव को बताई और कहा – मुझे अब जँगल से ईधन लाने से भय लगने लगा है । गुरूदेव ने उसे धैर्य रखने को कहा और अपना एक जूता दिया और कहा अब जब भी जँगल में जाओ वह स्त्री तुम्हें फिर मिलेगी तो उसके सिर पर यह जूता मार देना । इससे उस का मानसिक संतुलन फिर से ठीक हो जाएगा और वह तुम से कपड़े मांगेगी जो तुम साथ में ले जाना और उसे यहाँ दरबार में लाना । सिक्ख ने ऐसा ही किया जब वह पगली महिला उसे पीटने लगी तो उसने गुरूदेव के जूते से उसे पीटा वह तुरन्त स्वस्थ हो गई और लज्जा के मारे वस्त्र माँगने लगी । सिक्ख ने उसे वस्त्र दिये जो कि उसने पहले से ही तैयार रखे हुए थे और वह उसे गुरूदेव की आज्ञा अनुसार स्नान करवा कर दरबार में ले आया ।

नई परिस्थितियों का अनुमान लगा कर युवक सिक्ख को गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि वह इस महिला से विवाह करवा ले और इस प्रकार उन्होंने इन दोनों की जोड़ी को आशीर्वाद देकर गृहस्थी बसाने के साधन उपलब्ध करवा दिये।

सुपुत्री भानी के लिए वर का चयन

श्री गुर अमर दास जी युवा अवस्था में घर गशहस्थी से विरक्त रहना चाहते थे । इसलिए उन्होंने विवाह में कोई रूचि न दिखाई । इस लिए उन से छोटे भाईयों का विवाह कर दिया गया परन्तु अविभावकों का बदाव अधिक था । अतः उन्होंने बड़ी आयु में विवाह करवा लिया । अतः सन्ताने भी देर से उत्पन्न हुई । आप जब गोइन्दवाल में निवास करते थे तो आप की छोटी पुत्री भानी जी वर योग्य हो गई । इसलिए उनकी माता जी को चिन्ता हुई कि बिटिया का वर ढूँढ कर उस का विवाह कर दिया जाए । उत्तर में गुरूदेव ने कहा – आप को बिटिया के लिए वर किस प्रकार का चाहिए तो मन्सा देवी जी ने उत्तर दिया कि वह युवक जो चने उबले हुए बेच रहा है, इस जैसी छवि वाला होना चाहिए । गुरूदेव जी युवक को देखकर मुस्कुराये और कहा – इस जैसा तो कोई और युवक है ही नहीं। केवल इस जैसा तो यही है । क्या यही ठीक रहेगा ? मन्सा देवी जी ने कहा मैं क्या जानू आप ही ठीक निर्णय करें । उत्तर में गुरू देव जी ने कहा – यह युवक विनम्र, निष्ठावान, समर्पित, पुरूषार्थी, प्रतिभावान इत्यादि विवेकी गुणों से भरपूर है, कहो तो रिश्ता निश्चित कर दें । उत्तर में मन्सा देवी जी ने कहा – आप दूर दृष्टिवान हैं जैसा उचित समझें करें । तब उन्होंने बिटिया भानी को दूर से युवक जेठा जी दिखाये, जो उस समय चने बिक्री कर रहे थे और पूछा – बेटी यह युवक तुझे अपने लिए वर के रूप में स्वीकार है, उत्तर में भानी ने सिर झुका कर मौन स्वीकृति देते हुए कहा – मैं क्या जानूं आप ही उचित निर्णय करें । बस फिर क्या था । गुरूदेव ने जेठा जी को बुला लिया । बहुत स्नेहपूर्वक कहा – हमने तुझे अपनी कन्या के लिए वर रूप में चुना है, तुम्हें तो कोई आपत्ति नहीं । यह वाक्य सुनकर जेठा जी को आश्चर्य हुआ, वह ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उस गरीब को इतना सम्मान मिल सकता है । तभी वह हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बोले – मैं आपके चरणों की धूल हूँ । अतः मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आप के यहाँ रिश्ते नाते जोडूं । परन्तु गुरूदेव ने कहा – बेटा, हमारी दृष्टि में गुण बड़े हैं, साँसारिक वस्तुएं तुच्छ । इस लिए हम ऐसा चाहते हैं कि तुम यह रिश्ता स्वीकार करो । इस पर जेठा जी गुरूदेव के चरणों में नतमस्तक होकर प्रणाम करने लगे और उत्तर दिया जैसी आप की इच्छा । तभी गुरूदेव ने आदेश दिया, घर वापस जाओ और बारात लेकर आओ, जिससे तुम्हारा विवाह भानी से सम्पन्न कर दिया जाये । उत्तर में जेठा जी बोले – गुरूदेव जैसा कि आप जानते हैं कि मैं अनाथ हूँ । मेरा तो नानी माँ ने ही पालन पोषण किया है । मेरा तो आप के अतिरिक्त कोई भी नहीं । गुरूदेव ने सांत्वना देते हुए कहा – मुझे सब मालूम है । जब तुम्हारी नानी माँ तुम्हें 7 वर्ष की आयु में लाहौर चुना मण्डी से लेकर अपने गाँव बासरके लौटी थी तो उसने सब से पहले हमारी गोदी में तुम्हें बिठा दिया था और हमें बताया था कि इस बालक के माता पिता का देहान्त हो गया है और इस के सरंक्षक अब आप ही हैं । खैर .... वह सब बातें अतीत की हैं, अब तुम बासरके से नानी माँ को लेकर लाहौर अपने चाचा-ताऊ इत्यादि के पास जाओ और वहाँ से बारात बनाकर लाओ । इस पर जेठा जी सत् वचन (जो आप की आज्ञा) कह कर बासरके नानी माँ के पास चले गये ।

जेठा जी का जन्म 24 सितम्बर सन् 1534 को लाहौर नगर की चूना मण्डली में हुआ था । तीन वर्ष की आयु में आप की माता दयाकौर जी का देहान्त हो गया । जब आपकी आयु 7 वर्ष की थी तो आपके पिता हरिदास जी का भी निधन हो गया । इसलिए आपको नानी माँ अपने गाँव बासरके ले आई । यह गाँव गुरू अमरदास जी का पैतृक गाँव भी था । नानी माँ की आर्थिक दशा भी कोई अच्छी नहीं थी, परन्तु उन्होंने जेठा जी का पालन पोषण बहुत लगन से किया। कभी भी उनको माता पिता के स्नेह के अभाव का अहसास होने नहीं दिया और सभी प्रकार के विवेकी गुण देकर उनको शुभ सँस्कारों वाला युवक बनाया। जब जेठा जी शिक्षा पूर्ण कर चुके तो उन दिनों (गुरू) अमर दास जी को गुरू गद्दी की प्राप्ति हो गई और उन्होंने नया नगर गोइन्दवाल बसाया, जिसमें रोजगार के बहुत से नये साधन उपलब्ध हो रहे थे । अतः युवक जेठा जी ने भी नानी माँ से आज्ञा लेकर अपनी जीविका कमाने के लिए गोइन्दवाल में भाग्य परीक्षा करने के लिए परिश्रम करने लगे । आप प्रातःकाल उठकर गुरू दरबार में उपस्थित होकर कीर्तन तथा प्रवचन सुनते और फिर लंगर इत्यादि स्थानों की सेवा में जुट जाते। वहाँ से अवकाश प्राप्त कर घर पर अपने हाथों से भोजन तैयार करके सेवन करते तथा उबले हुए चने लेकर छाबड़ी द्वारा नगर के किसी कोने में बैठ कर उसे बिक्री करते, इससे जो आय होती उस में से दशमांक (आय का दसवां भाग)

निकाल कर अपनी गुजर-बसर करते । यह दशमांक वह गुरू के लंगर के लिए भेंट कर देते अथवा जरूरत मंदों को खोजकर उन पर व्यय कर देते । वह लंगर से भोजन कभी नहीं करते थे । उनका विचार था कि लंगर केवल यात्रियों के लिए अथवा बेसहारा, मोहताज लोगो के लिए है ।

गुरू का लंगर

श्री गुरू नानक देव जी जब किशोर अवस्था में थे तो उनको उनके पिता कल्याणचन्द (महता कालू जी) ने बीस रूपये व्यापार (सच्चा सौदा) करने के लिए दिये थे तो उन्होंने रास्ते में साधु मण्डली को भोजन (लंगर) करवा कर व्यय कर दिये थे । वास्तव में उन्होंने लंगर प्रथा की आधारशिला रखी थी । इस प्रथा को उन्होंने अपने जीवनकाल के अन्तिम दिनों में करतार पुर में जोर-शोर से व्यवहारिक रूप देकर प्रचार प्रसार किया था। इस प्रथा में विशेषता यह थी कि इस में कोई भी मानव बिना किसी भेदभाव के भोजन ग्रहण कर सकता था । गुरूदेव ने वर्गीकरण समाप्त करके समस्त मनुष्य जाति को समानता प्रदान कर दी थी । वर्ण आश्रम का चक्रव्यूह को सदा के लिए त्यागने का आदेश जारी कर दिया था। अत: मानव एकता के लिए लंगर सफल प्रयास सिद्ध हो रहा था । इसी प्रथा को उनके उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव जी ने आगे बढ़ाया और लंगर का स्तर बहुत ऊँचा उठाया । उनके लंगर में हर समय स्वादिष्ट पकवान खीर इत्यादि भी प्रतिदिन बांटी जाती थी । इस प्रकार यह प्रथा गुरू अमर दास जी के जीवनकाल में आगे बढ़ती चली गई । परन्तु कुछ जाति अभिमानी लोग लंगर प्रथा की निन्दा करते थे । उन का मानना था कि शुद्रों को अलग पंक्ति में बिठा कर भोजन करवाया जाना चाहिए । अत: वह गुरू घर में भोजन नहीं करते थे परन्तु गुरू दर्शनों के लिए गुरू दरबार में उपस्थित हो जाते थे । जब इस बात का गुरू अमर दास जी को मालूम हुआ तो उन्होंने एक विशेष आदेश जारी कर दिया कि कोई भी नया दर्शन अभिलाषी लंगर में भोजन ग्रहण किये बिना हमारे दर्शनों को नहीं आ सकता । प्रत्येक दर्शनार्थी अथवा जिज्ञासु को सर्वप्रथम लंगर से भोजन ग्रहण करना अनिवार्य घोषित कर दिया गया ।

लंगर तैयार करने और वितरण की प्रक्रिया में बहुत से भक्तजनों को सेवा का शुभ अवसर उपलब्ध होने लगा । इस कार्य में कई प्रकार की सेवा मिलने की सम्भावना रहती थी । पानी कुएँ से लाना, जँगल से ईंधन रूप में लकड़ी लाना, बर्तन साफ करना, चारों तरफ के क्षेत्र की सफाई करना कठिन कार्य भी कई भक्तजनों को बहुत अच्छे लगते थे । गुरूदेव का लंगर प्रात:काल से प्रारम्भ हो जाता और अर्धरात्रि तक जारी रहता । जब भोजन करने का कोई इच्छुक शेष न रहता तो सभी बर्तन खाली तथा स्वच्छ करके औंदे कर दिये जाते और फिर से सुबह पुन: ताजा भोजन तैयार किया जाता । लंगर तैयार करने में महिलाओं का सब से बड़ा योगदान यह होता कि वे प्रत्येक कार्य करते समय नाम वाणी का अभ्यास करती रहती । जिससे प्रत्येक व्यजनों में प्रभु प्रेम का रस भी सम्मिलित होता रहता । अत: लंगर साधारण भोजन ना रह कर अति स्वादिष्ट प्रसाद रूप बन जाता । जो भी जिज्ञासु लंगर ग्रहण करता उस का अन्त:करण प्रभु चरणों में लीन रहने लगता । इसके अतिरिक्त जो भी व्यक्ति अपनी जीविका के साधनों में से अपनी आय का दशमांक इत्यादि सफल करना चाहता तो उसे यहाँ सहज में वह स्थान दृष्टि गौचर होता । जहाँ उस धन का उचित प्रयोग होगा और उसके मन को शान्ति मिलेगी । अत: धर्मार्थ के विचार से दूर दूर से लोग धन अथवा अनाज गुरू के लंगर के लिए भेंट में लाते ।

गुरूदेव के लंगर में सदैव भीड़ बनी रहती जो भी भोजन ग्रहण करता वह गुरू नानक देव जी की स्तुति करता हुआ जाता । परन्तु कुछ ईर्ष्यालु व्यक्ति जो द्वेष के कारण लंगर प्रथा का विरोध करते थे वह गुरूदेव की कीर्ति सुनकर दुखी होते रहते । उनका मानना था कि यह लंगर प्रथा मानव कल्याण नहीं मानव विनाश है क्योंकि यहाँ ऊँच-नीच व्यक्तियों का भेदभाव ही नहीं किया जाता । जब कि ब्राह्मण वर्ग श्रेष्ठ है, उन्हें सर्वप्रथम भोजन कराना चाहिए और उनके लिए विशेष स्थान सुरक्षित रखा जाना चाहिए था, इस प्रकार तो धर्म ही भ्रष्ट कर दिया गया है ।

दासू जी द्वारा गुरू कहलवाने का असफल प्रयास

श्री गुरू अंगद देव जी ने गुरू अमर दास जी को जब अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तभी उन्होंने आदेश दिया कि अब आप गोइन्दवाल में ही रहेंगे और वहीं से गुरूमति प्रचार प्रसार करेंगे । अत: गुरू अमर दास जी ने गुरूदेव के आदेश अनुसार ही गोइन्दवाल को अपना मुख्यालय बनाया परन्तु दूर से आने वाली संगत को इस बात का ज्ञान न था । वे लोग अन्जाने में खडूर नगर पहुँच जाते । जब उन को मालूम होता कि गुरुदेव तो परमज्योति में विलीन हो गये हैं और उनके पश्चात नये गुरू उनके सेवक अमर दास जी हैं तो उन में से कोई लोग गोइन्दवाल पहुँच जाते, परन्तु कुछ लोग वहीं गुरू अंगद देव जी के लड़कों को शीश झुका कर नमस्कार करते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की चेष्टा करते तथा कुछ भेंट में धन अथवा बहुमूल्य वस्तुएं दे जाते । यह सब देखकर गुरूदेव की पत्नी (माता) खीवी जी ने दासू जी को सावधान किया और फटकारते हुए कहा - माना कि तुम गुरू के अंश हो परन्तु तुम्हें कोई अधिकार नहीं है भोले तथा अनजान लोगों से पूजा करवाने का क्योंकि यह अलौकिक दात केवल अमर दास जी को ही मिली है । यदि तुम नहीं मानोंगे तो प्रकृति की तरफ से इसका उत्तरदायी होना पड़ेगा । जिसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी । परन्तु दासू जी को एक तरफ धन का मोह तथा दूसरी तरफ प्रतिष्ठा, मान-सम्मान इत्यादि का मोह था, अत: माता जी की बात को नहीं माना । एक बार फिर माता जी ने दासू जी को समझाने का असफल प्रयास किया और कहा - गुरू गद्दी कोई विरासत की वस्तु नहीं है, वह तो प्रभु कृपा तथा विवेकी

गुणों से प्राप्त होती है । यदि ऐसा न होता तो गुरू नानक देव जी के पश्चात उनके बेटे गुरू बनते जो कि हर दृष्टि से योग्य भी थे परन्तु नहीं । उन्होंने बहुत परीक्षाओं के पश्चात् तुम्हारे पिता जी को चुना था । अत: फिर उन्होंने उसी विधि और उसी प्रथा अनुसार अमर दास जी का चयन किया है । अत: तुम जानबूझ कर भूल मत करो नहीं तो लेने के देने पड़ सकते हैं । परन्तु दासू जी एक कान से सुनते दूसरे से निकाल देते क्योंकि उनको गुरू कहलवाना बहुत प्यारा लगता था इसलिए वह इस पद से मोह भंग न कर पाये। प्रकृति ने खेल रचा जैसे जैसे दासू जी लोगों को वर अथवा शाप देते उसी प्रकार उनके सिर में पीड़ा रहने लगी । एक समय ऐसा आया उनको मिरगी जैसे दौरे पड़ने लगे और दासू जी छटपटाने लगे । माता जी से उनकी यह दशा देखी नहीं गई, वह उनको लेकर खडूर में क्षमा याचना करने पहुँची, जैसे ही गुरूदेव को मालूम हुआ कि माता जी उनसे भेंट करने आई हैं तो वह स्वयँ माता जी की अगवानी करने के लिए पहुँचे और उन्होंने कहा - मुझे संदेश भेजा होता, मैं ही आप के चरणों में उपस्थित हो जाता परन्तु माता खीवी जी ने उत्तर दिया कि जरूरतमंद मैं हूँ मुझे ही आना चाहिए था और उन्होंने दासू जी को गुरु चरणों में दण्डवत प्रणाम करने का कहा - मरता क्या नहीं करता दासू जी ने अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए वह सब कुछ किया जो वह नहीं चाहते थे । परन्तु गुरूदेव जी ने उन्हें तुरन्त उठ कर अपने कंठ से लगा लिया और कहा - आप हमारे आदरणीय हैं, आप तो मेरे गुरूदेव के जेठे सुपुत्र हैं । गुरूदेव के स्पर्शमात्र से उनके मस्तिष्क का भारीपन जाता रहा । इस प्रकार सुजान माता खीवी ने अपने बेटे को क्षमा दिलवा कर पुन: स्वास्थ्य लाभ लेकर वापिस घर आ गये ।

दातू जी

श्री गुरू अंगद देव जी के छोटे पुत्र दातू जी ने अपने बड़े भाई दासू जी, जो गुरू बनने का अभिनय कर चुके थे, उनकी दशा देखी थी और उनको क्षमा याचना करते भी देखा था परन्तु उनके मन में दबी अभिलाषा शान्त नहीं हुई । वह विचारने लगे गुरू किस विधि बना जा सकता है और हम में क्या कमी है जो हम गुरु नहीं बन सकते । उन्होंने ध्यान दिया कि गुरू नानक देव जी के सुपुत्र श्री चन्द जी अपने को गुरू कहलवाते हैं, भले ही उन को गुरू गद्दी नहीं मिली। हाँ, यह बात अलग है कि वह यती है और योग साधना द्वारा सिद्धि इत्यादि प्राप्त वैरागी । वह विचारने लगे कि यदि मैं योग द्वारा सिद्धि प्राप्त कर लूं तो यह समस्या हल हो सकती है । अत: उन्होंने इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए सिद्ध आसन सीखने प्रारम्भ कर दिये, हठ योग से उन को कई वर्षो के पश्चात एक-आध सिद्धि प्राप्त हो गई । बस उसको वह पूर्णता की निशानी समझ कर, उत्तेजित होकर बौखला गया । इस प्रकार उन्होंने अपनी चापलूस मण्डली के बहकावे में एक दुस्साहसपूर्ण योजना बना डाली और एक दिन वह अपनी चण्डाल चौकड़ी के साथ गोइन्दवाल पहुँच गये । उस समय वहाँ संध्या का दीवान सजा हुआ था और कीर्तनीय कीर्तन कर रहे थे । गुरूदेव अपने आसन पर विराजमान होकर संगतों में सुशोभित हो रहे थे कि अकस्मात पीछे से आकर दातू जी ने गुरूदेव को अपनी लात से प्रहार किया । जिस कारण गुरूदेव आसन से नीचे गिर पड़े । जैसे ही वह सम्भले उन्होंने पाया कि उनके गुरु पुत्र दातू जी आसन पर बैठे हैं । तभी गुरुदेव ने दातू जी के पाँव पकड़ कर कहा - आप मेरे गुरू पुत्र हैं । आपने इस सेवक को संदेश भेजा होता मैं आपकी अगवानी करने हेतु पहुँचता । आपने ठीक ही किया है, मुझ को दण्ड देकर, मैं आप का आभारी हूँ । आपके चरण कोमल हैं, मेरा बूढ़ा शरीर वज्र के समान कड़ा हो चुका है, कहीं आप को चोट तो नहीं आई? और वह दातू जी के चरण दबाते रहे । यह सब असहनीय दृश्य संगत देख रही थी परन्तु गुरुदेव का संकेत पाकर सब मौन थे । वे भी विचार रहे थे कि एक तरफ गुरू पुत्र दातू जी हैं, दूसरी तरफ शान्ति के पुंज अमर दास जी हैं । क्या किया जाए और क्या न किया जाए। संगत इस दुर्घटना से बहुत खिन्न हो रही थी परन्तु किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है । तभी दातू जी बोले - हम गुरू गद्दी के वारिस हैं। अत: तुम सेवक हो। अब हमें तुम्हारी सेवा की आवश्यकता नहीं, तुम वापस लौट जाओ। गुरूदेव ने ऐसा ही किया। वहाँ से उठकर वह बाहर चले गये और फिर कहाँ गये, किसी को मालूम नहीं हुआ। उधर संगत धीरे धीरे उठ कर चली गई और सभी ने दातू जी के कार्य की घोर निन्दा की । जब दरबार में कोई भी संगत रूप में न रहा तो दातू जी का माथा ठनका । उनको कुछ कुछ गलती का अहसास हुआ परन्तु चापलूसों ने उनको सांत्वना दी और कहा कल दरबार लगाकर अपने डूमों से कीर्तन करवाओ, लोग अवश्य ही आयेंगे । ऐसा ही किया गया परन्तु कोई भी नहीं आया । चारों ओर दातू जी की घोर निन्दा होने लगी । जब कोई चारा न चलता देखकर दातू जी ने लौटना ही उचित समझा । वह चापलूसों के बहकावे में गुरू दरबार की सभी कीमती सामग्री तथा धन-सम्पदा लेकर खच्चरों पर लदवा कर खडूर के लिए चल पड़े, परन्तु रास्ते में अंधेरा हो गया । उनको उस समय एक डाकुओं का टोला मिल गया, उन्होंने सभी सामान खच्चरों सहित दातू जी से छीन लिया और छीनाझपटी में एक डांग (लठ) दातू जी की टांग पर जोर से दे मारी, जिससे टांग की हड्डी में गहरी चोट आई और दातू जी पीड़ा से कहराने लगे । जब घर खडूर नगर पहुँचे तो माता खीवी जी ने और लोगों ने उन्हें फटकार लगाई । वह अपने इस जघन्य अपराध पर बहुत शर्मसार हो रहे थे और किसी को मुँह दिखलाने योग्य नहीं पा रहे थे । वह प्रायश्चित करना चाहते थे परन्तु वह भी सम्भव न था । टांग की चोट की पीड़ा हटने का नाम ही नहीं ले रही थी ।

दूसरी तरफ गोइन्दवाल में संगत चारों ओर गुरूदेव की खोज में निकल पड़ी, किन्तु उन का कहीं अता-पता मालूम नहीं हो सका । अन्त में बाबा बुड्ढा जी को निवेदन किया गया कि आप उनको खोजे तो उन्होंने संगत को सुझाव दिया कि उनकी घोड़ी को तबले से खुले में छोड़ दो वह अपने स्वामी को स्वयँ ढूँढ लेगी । ऐसा ही किया गया । घोड़ी खुले में छोड़ने पर वह चल पड़ी और पीछे पीछे

संगत । इस प्रकार वह चलते चलते बासरके गाँव के निकट एक स्थान पर पहुँची जिसमें एक छोटा सा मकान था। संगत ने उस मकान के बाहर एक तख्ती लटकी हुई देखी जिस पर लिखा था - इस द्वार को खोलना सख्त मना है । यदि किसी ने किवाड़ खोल कर अन्दर प्रवेश करने का प्रयास किया तो उसे हम बख्शेंगे नहीं । जब संगत ने यह इबारत पढ़ी तो सभी जान गये कि गुरूदेव इसी कमरे में हैं, परन्तु उनके आदेश के उल्लघंन करने का किसी को साहस नहीं हुआ । फिर से सभी चिन्तित हो गये कि अब क्या किया जाए । इस पर बाबा बुड्ढा जी ने युक्ति से काम लिया । उन्होंने कमरे के पिछवाड़े जाकर कमरे की दीवार में से सन लगा कर कुछ ईटें निकाल ली, जिससे उसमें एक आदमी अन्दर प्रवेश कर सके। सर्वप्रथम बाबा बुड्ढा जी ही अन्दर गये उन्होंने पाया कि गुरूदेव अन्दर समाधि स्थित हैं । फिर धीरे धीरे सभी संगत अन्दर प्रवेश करके गुरूदेव के चारों ओर बैठ गई और मौन प्रार्थना करने लगी । कुछ समय पश्चात जब गुरूदेव उत्थान अवस्था में आये तो उन्होंने संगत पर प्रश्न किया कि आप लोगों ने बाहर लिखा हुक्म नहीं पड़ा तो सभी ने उत्तर दिया कि पढ़ा था किन्तु हम ने वहाँ से प्रवेश ही नहीं किया। हम तो दीवार में छिद्र बना कर उसमें से अन्दर घुसे हैं । इस पर उदारता के पुंज गुरूदेव ने सभी को मुस्कुरा कर क्षमा कर दिया और संगत की विनती पर पुन: वापस गोइन्दवाल लौट आये ।

पण्डित हरी राम ;तपस्वीद्ध

श्री गुरू अमर दास जी के लंगर की प्रसिद्धि चारों ओर फैल रही थी परन्तु कुछ कट्टरपंथी लोग जो वर्ण आश्रम में विश्वास रखते थे, वे इस नई प्रथा के विपरीत दूषणबाजी करते रहते थे और गुट बना कर बिना किसी आधार के काल्पनिक धर्मभ्रष्ट होने का भय उत्पन्न करते रहते थे । इन लोगों में से प्रमुख थे पण्डित हरी राम जी, लोग जिन को तपस्वी जी कह कर सम्बोधन करते थे । पण्डित हरी राम जी कुछ दिनों से गोइन्दवाल नगर में ही निवास रखने लगे थे । यह महाशय पुरोहित का कार्य करते थे । इस लिए इनकी जीविका के साधन में, इनके लिए र्ण आश्रम हितकर था । जाति बन्धन टूटने पर इनको अपने पेट पर लात पड़ती दिखवाई देती थी । अत: ये लोग नहीं चाहते थे कि लंगर की स्तुति में प्रचार हो । वास्तव में इन का धर्म-कर्म से कोई लेना देना नहीं था । ये तो चाहते थे कि समाज में विभाजन के बल पर उनकी रोटी-रोजी चलती रहे । यदि सभी एक हो गए और कोई ऊँच-नीच न रहा तो उन का क्या होगा ? फिर कौन उन को सम्मान देगा ? बस इसी चिन्ता में यह पण्डित हरी राम जी मनोकल्पित भ्रम उत्पन्न कर करके दूषित प्रचार करने में व्यस्त रहते थे ।

धीरे धीरे पण्डित हरी राम की बातें गुरूदेव के कानों तक पहुँची । जब उनको मालूम हुआ कि कुछ स्थानीय लोगों को, जिन में स्वर्गीय चौधरी गोइन्दे के बेटे भी सम्मिलित हैं । लंगर के विरूद्ध भड़काया जा रहा है तो गुरूदेव ने युक्ति से काम लिया । उन्होंने पण्डित जी की गुटबन्दी तोड़ने के लिए एक विशेष आदेश जारी किया । जिससे घोषणा की गई कि जो व्यक्ति लंगर में भोजन करेगा उस को दक्षिणा में एक रूपया (चाँदी का सिक्का) भी दिया जाएगा । बस फिर क्या था लंगर के बाहर भारी भीड़ रहने लगी । नगर का कोई ऐसा व्यक्ति न रहा जिसने लंगर से भोजन ग्रहण न किया हो । इस प्रकार पण्डित हरी राम जी देखते ही रह गये और उनकी गुटबन्दी बिखर कर रह गई परन्तु अभी भी कुछ एक ऐसे व्यक्ति थे जो केवल एक रूपये में अपनी हठधर्मी त्यागना नहीं चाहते थे । गुरूदेव ने अगले दिन दक्षिणा की राशि दुगनी कर दी । राशि के दुगने होने पर भी बाकी के लोग भी लंगर में से भोजन सेवन करने लगे । परन्तु अभी तपस्वी हरी राम लोक लज्जा के कारण अड़ा हुआ था । गुरूदेव ने धन राशि फिर बढ़ाकर पाँच का एक सिक्का (मोहर) कर दी । इस पर चारों ओर से जन समूह उमड़ पड़ा । अब हरी राम भी विचारने लगा किस प्रकार प्राप्त की जाए । यदि मैं स्वयँ गुरू के लंगर में जाता हूँ तो लोग मेरा परिहास करेंगे और मैं कहीं का नहीं रहूँगा। इसलिए मुझे युक्ति से काम लेना चाहिए । इस पर उसने अपने लड़के को लंगर में भेजने का निश्चय किया परन्तु जब वह लंगर के पास पहुँचा तो लंगर का द्वार बन्द हो चुका था और बाहर प्रतिज्ञा में बहुत भीड़ खड़ी थी । हरी राम ने चुपके से लंगर की पीछे की दीवार से लड़के को अपने कंधे पर चढ़ाकर अन्दर कूद जाने को कहा - लड़का केवल 8 वर्ष की आयु का था । इस लिए वह कूदने से भयभीत होने लगा परन्तु जल्दी में हरी राम ने उसे पीछे से धक्का दे दिया । वह नीचे गिरा और टांग पर गहरी चोट आई । दर्द के कारण वह चिल्लाने लगा । सेवादारों ने उस से विस्तार से पूछताछ की । उत्तर में लड़के ने बताया कि मेरे पिता पण्डित हरी राम हैं और उन्होंने ही मुझे कंधे पर चढ़ाकर लंगर में कूदने के लिए बाध्य किया था क्योंकि दीवार ऊँची होने के कारण मैं कूद नहीं पा रहा था । अत: उन्होंने मुझे धक्का दे दिया है । जिससे मुझे गिरने पर चोट आई है । वह चाहते थे कि मैं भी भोजन करने के उपरान्त मोहर प्राप्त करूँ । यह घटना संगत के लिए हास्यास्पद थी क्योंकि पण्डित हरी राम तपस्वी स्थान स्थान पर गुरू के लंगर की आलोचना किया करते थे । लड़के को सेवादारों ने भोजन भी करवाया और एक मोहर भी दी परन्तु जन साधारण में पण्डित जी के विषय में चर्चाएं होने लगी कि वास्तव में पण्डित ढोंगी है, वह रूपया प्राप्ति के चक्र में कुछ भी कर सकता है। जब इस घटना का विवरण गुरूदेव को दिया गया तो उन्होंने अपनी वाणी में पण्डित हरीराम के मनोवृति का एक दृश्य चित्रण किया कि पण्डित लोभी तथा पाखण्डी प्रवृत्ति का स्वामी है ।

तपा न होवै, अंदरहु लोभी नित माइआ नो फिरै जजमालिआ ।
अगो दे सदिआ सतै दी भिखिआ लए नाही,
पिछो दे पछुताइ कै आणि तपै पुतु विचि बहालिआ ।

पंच लोग सभि हसण लगे, तपा लोभि लहरि है गालिआ ।
जिथै थोड़ा धनु वखै, तिथै तपा भिटै नाही,
धनि बहुतै डिठै तपै धरमु हारिआ ।
भाई एहु तपा न होवी बगुला है,
बहि साध जना वीचारिआ ।
सत पुरख की तपा निंदा करै, संसारै की उसतति विचि होवै,
एतु दोखै तपा दयि मारिआ ।
महापुरखां की निंदा का वेखु जि तपे नो फलु लगा,
सभु गइआ तपै का घालिआ ।।
बाहरि बहै पंचा विचि तपा सदाए ।।
अंदरि बहै तपा पाप कमाए ।।
हरि अंदरला पापु पंचा नो उघा करि वेखालिआ ।।
धरम राइ जमकंकरा नो आखि छड़िआ,
एसु तपे नो तिथै खड़ि पाइहु,
जिथै महा महां हतिआरिआ।।
फिरि एसु तपे दै मुहि कोई लगहु नाही,
ऐहु सतिगुरि है फिटकारिआ ।।
हरि कै दरि वरतिआ सु नानकि आखि सुणाइआ ।।
सो बुझै जु दयि सवारिआ।

गउड़ी की वार, म० 4 पृष्ठ 315

श्री गुरू अमरदास जी गुरमति प्रचार यात्रा पर

श्री गुरू अमर दास जी के मन में एक विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने अपनी आयु का अधिकांश भाग कर्मकाण्डों में व्यर्थ खो दिया। यदि मुझे वह वैष्णवसाधु व्यंग न करता तो न जाने यह समस्त जीवन ही पूर्ण गुरू के मिलाप के बिना व्यर्थ चला जाता । खैर ...... मुझ जैसे कई भक्तजन और भी हैं जिन के हृदय में पूर्ण गुरू प्राप्ति की तड़प तो है परन्तु दुर्भाग्यवश वह चाहते हुए भी वहाँ नहीं पहुँच पाते जहाँ उनको पहुँचना चाहिए । अत: उनका यह मानव जीवन व्यर्थ चला जाता है । शायद इसलिए श्री गुरू नानक देव जी ने समस्त जगत कल्याण के लिए ऐतिहासिक चार प्रचार यात्राएं की (दौरे) थीं और वह सफल भी हुई थी। उसी का परिणाम है कि भटकती मानवता पाखण्ड और व्यर्थ के कर्मकाण्ड छोड़ कर शाश्वत ज्ञान प्राप्ति के लिए उठ खड़ी हुई है । अत: हमें भी अपने गुरूदेव के पदचिन्हों पर चलते हुए उनका अनुसरण करना चाहिए जिससे भूली भटकी मानवता का फिर से मार्गदर्शन किया जा सके । यह विचार आते ही उन्होंने सर्वप्रथम हरिद्वार ही जाने का निश्चय किया क्योंकि वहाँ बहुत से श्रद्धालु आत्म ज्ञान की तृप्ति के लिए गुरूदेव ने स्वयँ विचरण करते देखे थे । इसलिए गुरू नानक देव जी वाली युक्ति गुरूदेव ने भी अपनाई । आपने भी अभिजित नक्षत्र के पर्व के समय वहाँ पहुँचने का निश्चय कर के यात्रा प्रारम्भ कर दी । आप का मत था कि इस पर्व पर दूर दूर से जिज्ञासु वहाँ एकत्र होते हैं । अत: यह समय गुरमति प्रचार के लिए उपयुक्त रहेगा । गुरूदेव प्रचार यात्रा पर प्रस्थान कर रहे हैं, यह जानते ही बहुत से श्रद्धालु आप के साथ चलने के लिए तैयार हो गये । इसलिए आप विशाल जनसमूह के साथ हरिद्वार की ओर चल पड़े । रास्ते में पड़ाव के समय स्थान स्थान पर दीवान सजाते संगत एकत्र होती, कीर्तन अथवा गुरूदेव के प्रवचनों का प्रवाह चलता । जनसाधारण गुरमति सिद्धान्तों से लाभान्वित होकर सन्तुष्ट हो जाते । इस प्रकार गुरूदेव यमुना नदी के किनारे पर पहुँच गये । वहाँ पर स्थानीय प्रशासन की तरफ से यमुना पार करने के लिए एक किश्तियों का पुल बनाया गया था । जिस के ऊपर से नदी पार करने पर किराया प्रति व्यक्ति एक रूपया अर्थात एक चाँदी का सिक्का था । जिस को वह लोग कर अथवा महसूल कहते थे । गुरूदेव के साथ संगत बहुत बड़ी संख्या में थी । अत: उन्होंने मसूलियों को संदेश भेजा कि हम आपको केवल 500 रूपये ही देंगे आप समस्त संगत को नदी पार करने दें परन्तु वे नहीं माने । उनका कहना था कि हम तो प्रति व्यक्ति ही वसूल करेंगे । इस पर भाई जेठा जी ने यमुना नदी का दूर दूर तक निरीक्षण किया । उन्होंने पाया कि एक ऐसा स्थान है जहाँ से बिना किसी बाधा के सहज में यमुना पार की जा सकती है क्योंकि वहाँ पर पानी का बहाव धीमा है और नदी का जल बहुत फैला हुआ है । बस फिर क्या था संगत ने तुरन्त वहाँ से नदी पार करनी प्रारम्भ कर दी । इस कारण मसूलिये बहुत छटपटाये । इस प्रकार गुरूदेव हरिद्वार पहुँच गये

तीरथ उदमु सतिगुरू कीआ सभ लोक उधरण अरथा ।
मारगि पंथि चले गुर सतिगुर संगि सिखा । *पृष्ठ 116*

गुरूदेव के हरिद्वार पहुँचने का एक मात्र उद्देश्य जनसाधारण के कल्याण के लिए उपाय करना तथा उन्हें कर्मकाण्डों अथवा पाखण्डों से मुक्त करवा कर शाश्वत ज्ञान देना था ।

जैसे ही वहाँ के पण्डों अथवा भेखी साधू, सन्यासी इत्यादि लोगों को मालुम हुआ कि कोई बड़े पुरूष यहाँ पधार रहे हैं तो वहाँ इन लोगों को भिक्षा मिलने की आशा में ताँता लग गया । उन्होंने गुरूदेव को चारों तरफ से घेर लिया और भिक्षा के लिए परेशान करने लगे । गुरूदेव ने सभी को शान्त होकर बैठ जाने का संकेत किया और सेवकों द्वारा सब को बराबर का धन, सिक्कों के रूप में वितरण करने का आदेश दिया परन्तु यह लोग न शान्त बैठ सकते थे न भिक्षा मिलने पर सन्तुष्ट हो सकते थे क्योंकि उनके हृदय में त्याग के स्थान पर अभिलाषाएं, तृष्णाएं अँगड़ाईयाँ ले रही थी । इसलिए वहाँ पर खलबली मच गई और हल्ले-गुल्ले में कुछ लोग आपस में दंगा करने लगे । यह सब दृश्य देखकर गुरूदेव बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने कहा - यह अभ्यागत वास्तव में अभ्यागत है ही नहीं, केवल दम्भी लोग हैं ।

अभिआगत एहि न आरवीअनि जि पर घरि भोजन करेनि।।
उदरै कारणि आपके बहले भेरव करेनि।।
अभिआगत सेई नानका जि आतम गउणु करेनि।।
भालि लहनि सहु आपणा निजु घरि रहणु करेनि।।

म० 3 पृष्ठ 949

इसके पश्चात् गुरूदेव ने वहाँ पर मेले के स्थल से कुछ दूर एक मंच बनवा कर दर्शनार्थी के लिए प्रवचन किये जिसमें उन्होंने मानव जीवन के मनोरथ पर विचार प्रकट करते हुए कहा - ''मानव जम्न विषय विकारों में बर्बाद करने के लिए नहीं है । यह किसी ऊँचे प्रयोजन के लिए है । अत: हमें सदैवसावधान रहना चाहिए कि हमारे अमूल्य श्वास कहीं व्यर्थ तो नहीं नष्ट हो रहे क्योंकि यह शरीर रूपी मन्दिर हमें पुन: प्राप्त होने वाला नहीं । हमारा मुख्य लक्ष्य इस जीवन को सफल करना होना चाहिए जिससे हम आवागमन के चक्र से मुक्त हो सके । इसीलिए उस परमेश्वर ने बाकी जीव जन्तुओं से मानव शरीर रूपी अद्भुत सृजना की है । इसी शरीर में वह सभी सुविधएँ उपलब्ध हैं जो इसी ओर योनि में नहीं है । हमें समय रहते इस काया से लाभान्वित होना चाहिए । अत: हमें किसी पूर्ण गुरू से शाश्वत ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए और गुरू दीक्षा लेकर जन्म सफल करना चाहिए ।

ऐ सरीरा मेरिआ, इस जग महि आइ कै, किआ तुधु करम कमाइआ।
कि करम कमाइआ तुधु सरीरा, जां तू जग महि आइआ ।
जिनि हरि तेरा रचनु रचिआ, सो हरि मनि न वसाइआ ।
गुरपरसादी हरि मनि वसिआ पूरबि लिखिआ पाइआ ।
कहै नानकु एहु सरीर परवाणु होआ, जिनि सतिगुर सिउचितु लाइआ ।

गुरूदेव के हरिद्वार से लौटते समय रास्ते में मेहड़े गाँव का पण्डित दुर्गा दास मिलने आया । गुरूदेव ने उस का स्वागत किया । उसने अभिनन्दन करने के पश्चात अपनी भविष्यवाणी के विषय में दोहराया और याचना करने लगा । गुरूदेव ने प्रसन्न होकर कहा - आप को साँसारिक वस्तुएँ चाहिए अथवा आध्यात्मिक प्राप्तियाँ चाहिए । इस पर दुर्गा दास विचारमग्न हो कहने लगा । गुरूदेव जी केवल एक की प्राप्ति से काम नहीं चलेगा क्योंकि कार्य सम्पूर्ण नहीं होगा आप मुझ पर विशेष कृपा करें मुझे दोनों वस्तुएँ उपहार में दें । गुरूदेव प्रसन्न हुए उन्होंने वचन किया इस सँसार में आप को धन का अभाव नहीं रहेगा और आध्यात्मिक दुनिया में भी प्रभु की निकटता पाओगे । वहाँ से कुरूक्षेत्र पहुँचे । उन दिनों यहाँ नक्षत्र अभिजित के उपलक्ष्य में मेले का आयोजन किया गया था । अत: दूर दूर से श्रद्धालु स्नान के लिए आ रहे थे । गुरुदेव ने समय उपयुक्त जान कर समस्त मानव कल्याण के लिए जिज्ञासुओं को सम्बोधन करते हुए प्रवचन किये और कहा - आप के यहाँ अभिजित नक्षत्र में विशेष स्नान करने का मुख्य उद्देश्य है । हम अपने मुख्य शत्रु पर विजय प्राप्त करने में सफल हों । परन्तु हमें यह जानना अति आवृयक है कि हमारा सब से निकटवर्ती शत्रु कौन है ? जो हमें विचलित कर के पथभ्रष्ट करता रहा है । यदि हम इस रहस्य को आज यहाँ से जानकर घरों को लौटेगें तो हमारा यहाँ आना सफल सिद्ध होगा । जिज्ञासुओं की भीड़, इस रहस्य को जानने के लिए उत्सुक थी । अत: गुरूदेव ने बताया - हमारा मन राजा है जो पथभ्रष्ट हो जाता है । इसको विचलित करने वाले हमारे शत्रु हमारे भीतर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अँहकार रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं । हमें सुचेत होना है और इन पर नियन्त्रण करते रहने का प्रयास करते रहना है । इन पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं की जा सकती किन्तु इन शत्रुओं को अपने हित में प्रयोग किया जा सकता है । काम रूपी ऊर्जा को साधना द्वारा हरिभजन रूप उतेजना में भक्तजन परिवर्तित करते हैं । इसी प्रकार क्रोध को वीरता, लोभ को विकास रूपी कार्यो में, मोह को समस्त मानव कल्याण के कार्यो के लिए तथा अँहकार को स्वाभिमान में परिवर्तति करके जीवन में क्रान्ति लाई जा सकती है परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब हम मित्रों से मिलकर, उनसे युद्ध करते रहेंगे । हमारे ये मित्र हैं - दया, धैर्य, सन्तोष, क्षमा, प्रेम इत्यादि । हमें इन शुभ गुणों का विकास करना होगा और शत्रुओं पर इनके बल से नियन्त्रण करके मन राजे को पथभ्रष्ट होने से बचाना है । यह कार्य किसी पूर्ण पुरुष के सानिध्य में रहकर अथवा उनके उपदेश पर जीवनयापन करने से हो सकता है अन्यथा जीवन भर भटकना ही पड़ेगा। यदि मानव जन्म में लक्ष्य प्राप्ति से चूक गये तो फिर प्राणी को चौरासी के चक्रव्यूह में कई जन्म लेने पड़ेगे और आवागमन का चक्र कभी समाप्त नहीं होगा ।

गुरमुखि करणी कार कमावै ।
ता इसु मन की सोझी पावै ।
मनु मैं मतु मैगल मिकदारा ।
गुर अंकसु मारि जीवाण हारा ।

गुरूदेव ने कहा - यदि हम संयम से कार्य करें तो मन जो शराबी हाथी की तरह बगावत किये हुए हैं, उस पर गुरू उपदेश के अंकुश से नियन्त्रण किया जा सकता है ।

रूढ़िवादियों द्वारा गुरूदेव के विरू(आपत्ति

श्री गुरू अमर दास जी समस्त मानव कल्याण हेतु कार्यो में व्यस्त थे व उनका मुख्य उद्देश्य निम्न स्तर पर जीवनयापन करने वाले परिवारों का उत्थान करके समाज में उन को समानता का जीवन जीने के लिए अधिकार दिलवाना था । अत: उन्होंने गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों को जिन को वह गुरमति कहते थे, व्यवहारिक रूप देकर जोरों-शोरों से प्रचार प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया । इन कार्यो में सर्वप्रथम कार्य था - गुरू का लंगर जो समस्त मानव जाति के लिए बिना भेदभाव एक समान था जिसे उन्होंने प्रत्येक जिज्ञासु के लिए अनिवार्य कर दिया था । दूसरा था - नारी जाति को पुरूषों के समान अधिकार देना । जिसमें आप जी ने विधवा महिलाओं के लिए पुन:विवाह की अनुमति प्रदान कर दी, इसके साथ ही उन्होंने एक विशेष आदेश जारी किया कि किसी महिला को भी उस के मृत पति के साथ सती नहीं किया जाएगा और किसी भी महिला को कोई घूंघट निकालने के लिए बाध्य नहीं कर सकता । भले ही वह नवविवाहिता ही क्यों न हो । तीसरा - मूर्ति पूजा तथा देवी देवताओं का त्याग करके सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक पारब्रह्म परमेश्वर की उपासना करना । वैसे इन सिद्धान्तों पर गुरू नानक देव जी स्वयँ भी बहुत कार्य कर चुके थे किन्तु इन का समाज में विस्तार करना अभी बाकी था । इसीलिए यह कार्य इन्होंने अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया था । अब वह उचित समय था जब इन सिद्धान्तों का समस्त देश में प्रचार प्रसार किया जाता । अत: गुरू अमर दास जी ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये जिनकी संख्या बाईस तक हो गई और इसके अतिरिक्त बावन सहायक प्रतिनिधि नियुक्त किये इनको उस समय की भाषा में मंजीदार तथा पीढ़ेदार कहा जाता था। मंजीदार से तात्पर्य था बड़ा आसन तथा पीढ़े का अर्थ था छोटा आसन । इन लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार उपाधियाँ देकर सम्मानित किया गया था । इन का कार्य क्षेत्र अपना पैतृक नगर अथवा कसबा ही हुआ करता था, जिन में इन मंजीदारों अथवा पीढ़ेदारों ने गुरमति के सिद्धान्त जनसाधारण को उनके कल्याण के लिए समझाने होते थे कि सहज मार्ग अपना कर जीवन सुखमय बनाओ और रूढ़िवादी अथवा दकियानूसी विचार त्याग कर भाईचारे और परस्पर प्रेम से मानवता का उत्थान करने में सहायक बनो । परन्तु यह सब समाज के तथाकथित ठेकेदारों, पुजारी वर्ग को नहीं भाता था क्योंकि उनकी दुकानदारी बन्द होती थी और उनके पेट पर लात पड़ती थी । वह अपनी जीविका के लिए बौखला उठे क्योंकि गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों को मानने वाले उनके चंगुल से निकलते जा रहे थे । इस प्रकार से अपनी मनमानी करके जनता का शोषण करने में अपने आप को असमर्थ पा रहे थे क्योंकि जनता में जागृति लाई जा रही थी ।

पँजाब में उन दिनों 'सखी सरवड़ियों' की गद्दी चलती थी । ये लोग अपने मृत पीर की कब्र की पूजा करते थे और मनौतियाँ मानते थे । साधारण किसान (हिन्दु, मुस्लिम) दोनों इन के चुगुल में फँसे हुए थे । गुरूवार को ये सरवरिए लोग कब्र पर कव्वालियाँ इत्यादि गाते और लोगों से दूध, अनाज तथा धन इत्यादि मनौतियों के बदले में लेते थे । इस प्रकार अंधविश्वास में जनता का शोषण चलता रहता था । इन कब्र पूजकों को लोग खवाजे कह कर पुकारते थे । जैसे ही गुरूदेव के प्रतिनिधियों (मंजीदारों तथा पीढ़ेदारों) ने गुरूमति प्रचार प्रसार का आन्दोलन चलाया लोगों में अंधविश्वास को हटा कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परम पिता परमेश्वर की उपासना की बात चलाई तो स्वाभाविक ही लोग इन के चुगुल से स्वतन्त्र होकर एकीश्वर की पूजा में लीन हो गये जिस से खवाजे बौखला कर बदले की आग में जलने लगे । दूसरी ओर जाति-पाति अथवा वर्ण-आश्रम का भेदभाव उत्पन्न करके जनता का शोषण करने वाले पुजारी, पुरोहितगण इत्यादि, पहले से ही गुरूमति प्रचार के विरूद्ध मोर्चा सम्भाल बैठे थे अत: इन लोगों ने मिल कर एक युक्तिपूर्ण योजना बनाई । जिस के अन्तर्गत गोइन्दवाल के चौधरी और स्वर्गीय गोइंदे के लड़कों को बहका कर अपने साथ मिला लिया । निश्चय यह किया गया कि गुरूदेव को गोइंदवाल खाली करने पर विवश कर दिया जाए । इस कार्य के लिए प्रशासनिक अधिकारी के समक्ष एक निवेदन पत्र गोइन्दे के परिवार के सदस्यों की ओर से भेजा जाए कि गुरूदेव ने हमारी पैतृक भूमि पर अवैध कब्जा किया हुआ है, कृपया हमें इन से खाली करवा के पुन: लौटाया जाए । योजना अनुसार ऐसा ही किया गया और आरोप पत्र लाहौर के राज्यपाल (सूबेदार) के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया । लाहौर के राज्यपाल खिजर ख्वाजी खान ने जाँच के आदेश दे दिये । जाँचकर्त्ताओं का दल गोइन्दवाल पहुँचा । उन्होंने गुरूदेव के लंगर से भोजन किया और चारों ओर निष्काम सेवा भजन होते देखा, उनको कहीं कोई आपत्तिजनक बात दृष्टिगोचर नहीं हुई । अन्त में उन्होंने गुरूदेव से भूमि की प्राप्ति की वार्ता सुनी । गुरूदेव ने उन्हें बताया कि यह भूमि हमें भाई गोइन्दे मरवाह ने अपनी इच्छा से भेंट में दी थी और उसका भवन निर्माण में बहुत बड़ा योगदान रहा है । इस प्रकार यह मुकद्दमा रद्द कर दिया गया ।

पेय जल के कारण झगड़े

श्री गुरू अमर दास जी ने गोइन्दवाल नगर बसाने में स्थानीय चौधरी गोइन्दा मरवाह की हर दृष्टि से सहायता की । उसने भी गुरूदेव को वहीं बसने के लिए स्थान दिया और धर्मशाला इत्यादि बनवाने में सहयोग दिया परन्तु उसके देहान्त के पश्चात उसके दोनों पुत्र उस जैसी विचारधारा तथा दूरदृष्टि वाले न थे। जल्दी ही बहकावे में आ जाते थे और थोड़े से स्वार्थ के कारण गुरूदेव तथा संगत से अनबन करने को तत्पर हो जाते थे । जैसे जैसे नगर का विकास हुआ, नगर की जनसंख्या बढ़ने के कारण पेय जल के अभाव को लोग अनुभव करने लगे। इस भूमि पर केवल एक ही कुँआ था जिससे सभी निवासियों को पेय जल उपलब्ध होता था। दूसरा कुँआ खोदा नहीं जा सकता था क्योंकि नीचे कठोर चट्टाने थी। अत: कुँए पर सदैव भीड़ बनी रहती थी इस लिए जल के अभाव के कारण स्थानीय लोगों में कहा सुनी होती ही रहती थी, परन्तु कभी कभी लोग गुटबन्दी बनाकर झगड़ा भी करते थे। चौधरी गोइन्दे के लड़के अपने को कुँए का स्वामी बताते थे। अत: वे इस अधिकार से पानी प्राप्त करने के लिए अनुचित लाभ उठाते थे, जिस कारण गुरू घर के सेवादार जो लंगर के लिए पानी भरने आते थे, लम्बी प्रतीक्षा में खड़े दिखाई देते थे। कुछ सेवादारों ने गुरूदेव से निवेदन किया कि गोइन्दे मरवाह परिवार के दुर्व्यवहार से हमें बचाएं। वे लोग हमारे घड़े तोड़ देते हैं और पानी नहीं भरने देते । हमें लम्बी प्रतिक्षा में खड़े रहना पड़ता है। आपके आदेश अनुसार झगड़ा भी नहीं कर सकते। गुरूदेव ने सेवकों को सांत्वना दी और कहा हम जल्दी ही एक ऐसी बाउली यहाँ तैयार करेंगे जिसमें पानी भरने के लिए लम्बी कतारे न लगानी पड़े और उन्होंने बाउली बनाने का निर्णय ले लिया परन्तु बाउली निर्माण में समय लगना था तब तक इसी कुँए पर निर्भर रहना था। मरवाह भाई अपनी स्वभाव अनुसार गुरू सेवकों को पेरशान करते रहते थे। कभी उन की मशकों में छेद कर देते तो कभी उनकी गागर अथवा घड़ों को तोड़ने-फोड़ने का प्रयत्न करते किन्तु गुरू सेवक गुरू आज्ञा अनुसार शांतचित बने रहते। उन्हीं दिनों एक शस्त्रधारी संन्यासियों का दल देश पर्यटन करता-करता गोइन्दवाल पड़ाव डाल कर रहने लगा। उनका शिविर कुँए के निकट था, वे लोग शिविर लगाने से पहले किसी पेय जल के स्त्रोत को मद्देनजर रखते थे । मरवाह परिवार के सदस्यों ने इन संन्यासियों के साथ भी अभद्र व्यवहार किया । पहले तो वे लोग सहन कर गये परन्तु अति होने पर वे लोग एकत्र होकर अन्याय के विरूद्ध डट गये । अपने स्वभाव अनुसार मरवाह परिवार ने उन लोगों के बर्तन भी तोड़ फोड़ दिये । बस फिर क्या था, संन्यासियों ने अपने शस्त्र तथा लट्ठ उठा लिये और मरवाह परिवार और उनके सहायक लोगों पर टूट पड़े, भंयकर युद्ध हुआ । इस युद्ध में दोनों पक्षों को क्षति उठानी पड़ी। संन्यासी तो वहाँ से प्रस्थान कर गये, परन्तु मरवाह परिवार को बहुत नीचा देखना पड़ा, इनकी अकड़ टूट गई । इस प्रकार कुछ दिन शांत निकल गये किन्तु उनकी पुरानी आदत नहीं जाती थी वे लोग फिर से सिक्खों के साथ दुर्व्यवहार करने लगे। प्रकृति ने एक खेल रचा। एक शाम गोइन्दवाल सरकारी कर्मचारी लाहौर से खजाना लेकर दिल्ली जा रहे थे। उन्होंने रात के लिए पड़ाव गोइन्दवाल कर लिया क्योंकि यहाँ सभी प्रकार की सुविधाएं थी। वे लोग विचार कर रहे थे कि प्रात:काल व्यास नदी पार कर लेंगे। परन्तु जब सूर्य उदय हुआ तो उन्होंने पाया कि एक खच्चर जो कि चाँदी के सिक्कों से लदी थी, कम है। बस फिर क्या था, वे लोग नगर का कौना कौना छानने लगे और पूछताछ करने लगे कि कहीं आप लोगों ने खच्चर तो नहीं देखी। खच्चर खो जाने पर उनका वरिष्ठ अधिकारी बहुत आवेश में था क्योंकि उस की प्रतिष्ठा दांव पर लगी हुई थी। अत: वह घर घर की तलाशी लेने लगे। इस अभियान में उन्होंने खच्चर के हिंकने की ध्वनि सुनी। तुरन्त खच्चर खोज निकाली गई। खच्चर गोइन्दे मरवाह के बेटों के घर से बरामद कर ली गई। क्रोधित सिपाहियों ने उसी क्षण गोइन्दे के बड़े बेटे को मृत्यु शय्या पर सुला दिया किन्तु छोटे बेटे को उस की माता ने गुरूदेव की शरण में पहुँचा दिया, जिससे उसका जीवन बचा लिया गया । इस प्रकार गोइन्दवाल में फिर से शान्ति स्थापित हो गई ।

भाई लंगह जी

श्री गुरू अमर दास जी सुबह का नाश्ता दही के साथ करते थे। दही लाने की सेवा एक सिक्ख करता था। इस व्यक्ति का गाँव गोइन्दवाल से दो कोस की दूरी पर स्थित था। इस व्यक्ति की बाल्याकाल से एक टांग पोलियों रोग द्वारा क्षतिग्रस्त थी, जिस कारण वह लंगड़ा कर चलता था और उसे एक वैशाखी का सहारा लेना पड़ता था। यह सेवा वह कई वर्ष से गुरूदेव का भक्त होने के नाते करता चला आ रहा था। रास्ते में उसे स्थानीय चौधरी प्राय: मिल जाता था। जब वह चौधरी भाई 'लंगाह' जी को देखता तो उससे हँसी ठिठोली करता और कहता कि तू प्रतिदिन इतने दूर दही ढोने का कार्य करता है और लंगड़ा होने के नाते कष्ट भोगता है । क्या तेरा गुरू तेरी टाँग ठीक नहीं कर सकता? भाई जी उसका व्यंग सुनते और शांत रहते परन्तु वह कभी उत्तर देने के लिए बाध्य भी करता। इस पर भाई लंगाह जी केवल यही उत्तर देते कि मैं तो निष्काम सेवा करता हूँ। मुझे अपने लिए गुरूदेव से कुछ नहीं चाहिए। किन्तु चौधरी कहता वह तो ठीक है फिर सेवा करने का तुझे क्या लाभ हुआ? उत्तर में भाई जी कहते - मैं तो सेवा प्रेमवश करता हूँ, इसमें लाभ-हानि नहीं देखी जाती। चौधरी इन उत्तरों से सन्तुष्ट नहीं होता और फिर कहता हमें तेरे पर बहुत दया आती है क्या तुम्हारे गुरू को तुम्हारे पर दया नहीं आती। उत्तर में भाई जी कहते कि गरूदेव समर्थ हैं और पिता स्वरूप हैं, वह अपने बच्चों की आवश्यकताएं जानते हैं। वह उचित समझेंगे तो सभी प्रकार की बख्शीशें करेंगे। इस प्रकार समय व्यतीत होता जाता था। वास्तव में धन की अधिकता के कारण चौधरी एक मनचला नास्तिक किस्म का व्यक्ति था, जिसे धर्म कर्म पर कोई विश्वास नहीं था। एक दिन चौधरी ने भाई लंगाह जी को रास्ते

में घेर लिया और उन को अपने मित्रों सहित परेशान करने लगा और साथ में उनकी वैशाखी भी छीन ली और कहने लगा - बताओ तुमने गुरू से कहा कि नहीं कि मेरी टांग ठीक कर दो । भाई लंगाह जी बहुत धैर्य से उत्तर दिया कि मुझे इस की आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई । इस पर चौधरी ने कहा - तो ठीक है, आज हम तुम्हें यह वैशाखी नहीं देते, अब बताओ तुम्हें टांग ठीक करवाने की आवश्यकता है कि नहीं । भाई जी ने बहुत विनम्र भाव से चौधरी को निवेदन किया कि मुझे जाने दो परन्तु चौधरी कहाँ मानने वाला था। बस उस को भाई लंगाह जी का परिहास करने का जनून था । वह कहता कि तुझे वर्षों व्यतीत हो गये सेवा करते करते । ऐसी सेवा का क्या लाभ, जिससे थोड़ा सा शरीर का कष्ट भी नहीं हटता ? किन्तु भाई लंगाह जी शांत चित अडोल केवल नम्रतापूर्वक विनती करते रहे कि चौधरी जी मुझे जाने दो । अन्त में चौधरी ने अपना मन बदल कर वैशाखी लौटा दी परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी । जब भाई लंगाह जी दही लेकर गुरूदेव के सम्मुख उपस्थित हुए तो उन्होंने देर से आने का कारण पूछा । उत्तर में भाई लंगाह ने कहा - आप सर्वज्ञ हैं, अत: मैं क्या आप को बताऊँ । गुरूदेव ने उन्हें सांत्वना दी और कहा - करतार भली करेगा । आप लाहौर चले जाये । वहाँ सूफी संत शाह हुसैन जी हैं । उनको कहो कि मुझे अमर दास जी ने आप के पास भेजा है और निवेदन करना कि आप मेरी टांग ठीक कर दें । भाई लंगाह जी ने आज्ञा पाकर ऐसा ही किया । बैलगाड़ी की यात्रा करके वह लाहौर पहुँच गये । उन्होंने शाह हुसैन जी के दरबार में प्रार्थना की कि आप मेरी टांग ठीक कर दें । शाह हुसैन जी ने उस से सारी वार्ता ध्यान से सुनी और कहा गुरू अमर दास जी पूर्ण पुरूष है, तू उन का दर छोड़ कर यहाँ क्या लेने चला आया है । आप तुरन्त लौट जाओ और वहीं उन के पास फिर से मेरी ओर से भी विनती करना कि मैं तो एक अदना सा सेवक हूँ । मेरे पास ऐसी सर्मथता कहाँ जो मैं चमत्कार दिखा सकूं । किन्तु भाई लंगाह जी नहीं माने । वह कहने लगे कि मुझे उन्होंने ही आप के पास भेजा है, वैसे मैं अपने आप कभी भी आने वाला नहीं था । इस पर दोनों तरफ से दबाव पड़ने लगा । पीर जी कहते तुम वापस जाओ क्योंकि गुरूदेव समर्थ हैं । लंगाह कहता कि उन्होंने ही आप के पास भेजा है । अत: कहा सुनी हो गई । अन्त में आवेश में आकर एक लट्ठ लेकर पीर जी भाई लंगाह को मार भगाने दौड़ पड़े और कहने लगे - जाता है कि नहीं । अभी तेरी टाँग ठीक किये देता हूँ। मार के भय से भयभीत भाई लंगाह अपनी वैशाखी वहीं छोड़ भाग खड़ा हुआ। देखता क्या है कि उसकी टांग ठीक हो गई है । अब उसे वैशाखी के सहारे की आवश्यकता नहीं रही । वहीं खुशी खुशी मन ही मन गुरूदेव का धन्यवाद करता हुआ वापस लौट आया। जब उस गाँव में चौधरी ने भाई लंगाह जी को बिल्कुल ठीक पाया तो वह अपनी मूर्खता पर प्रायश्चित करने गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुआ और क्षमा याचना करने लगा।

गंगू शाह

श्री गुरू अमर दास जी के दरबार में दर्शनार्थियों की सदैव भीड़ बनी रहती थी । एक दिन लाहौर नगर का एक व्यापारी आपके समक्ष उपस्थित हुआ और विनती करने लगा कि गुरुदेव जी मेरे व्यापार में स्थिरता नहीं रहती । मैंने बहुत घाटे खाये हैं । कृपया कोई ऐसी युक्ति बताएं कि जिससे बरकत बनी रहे । उत्तर में गुरूदेव ने कहा गंगू शाह तेरे व्यापार में प्रभु ने चाहा तो बहुत लाभ होगा । यदि अपनी आय में से प्रभु के नाम से दशमांश निकाल कर जरूरतमंदो की सहायता करने में खर्च करने लग जाओगे तो। गुरूदेव इस व्यापारी को पहले से ही जानते थे। कभी समय था जब आप व्यापार के विषय में बासरके से इस साहूकार के लाहौर में सहयोगी हुआ करते थे।

गंगू साहूकार ने वचन दिया और कहा - आप का आशीर्वाद प्राप्त होना चाहिए । मैं दशमांश धर्मार्थ खर्च किया करूँगा। वह गुरूदेव से आज्ञा लेकर दिल्ली नगर चला गया । वहाँ उसने नये सिरे से साहूकारा प्रारम्भ किया । धीरे धीरे व्यापार फलीभूत होने लगा । कुछ समय में ही गंगू शाह बढ़े साहूकारों में गिना जाने लगा। एक बार प्रशासन को एक लाख रूपये की लाहौर नगर के लिए हुंडी की आवश्यकता पड़ गई । कोई भी व्यापारी इतनी बड़ी धन राशि की हुंडी बनाने की क्षमता नहीं रखता था । परन्तु गंगू शाह ने यह हुंडी तुरन्त तैयार कर दी । इतनी बड़ी क्षमता वाला व्यापारी जानकर सरकारी दरबार में भी उनका सम्मान बढ़ने लगा।

एक अभ्यागत, एक दिन गोइन्दवाल में आपके दरबार में उपस्थित हुआ और विनम्र विनती करने लगा - हे गुरूदेव जी, मैं आर्थिक तंगी में हूँ । मेरी बेटी का विवाह निश्चित हो गया है परन्तु मेरे पास धन है नहीं, जिससे मैं उसका विवाह सम्पन्न कर सकूँ । अत: आप मेरी सहायता करें । गुरुदेव ने उस को एक हुंडी पाँच सौ रूपये की दी और कहा यह हुंडी हमारे सिक्ख गंगू शाह के नाम से है, आप इसे लेकर उसके पास दिल्ली जाए, वह यह राशि आप को तुरन्त दे देगा । जब वह व्यक्ति हुंडी लेकर गंगू शाह के पास दिल्ली पहुँचा तो वह विचारों में खो गया और सोचने लगा कि हुंडी का रूपया भुगतान करने में मुझे कोई मुश्किल नहीं है । यदि मैं आज यह रूपये सिक्ख को दे देता हूँ तो कल गुरूदेव के पास से अन्य लोग भी आ सकते हैं क्योंकि वहाँ तो ऐसे लोगों का तांता लगा रहता है और मैं किस किस की हुंडी अदा करता फिरूगां । बस यह विचार करके वह मुकर गया और बोला - भाई साहब मैंने समस्त खाते देख लिए हैं, मेरे पास गुरुदेव जी का कोई खाता है ही नहीं । अत: मैंने उन का कुछ लेना देना नहीं है । सिक्ख ने बहुत नम्रतापूर्वक आग्रह किया कि गुरूदेव मुझे कभी गलत हुंडी नहीं दे सकते । आप मुझे निराश मत लौटाएं क्योंकि मेरा निराश लौटना गुरूदेव का अपमान है, किन्तु गंगू शाह माया के अभिमान में मस्त कुछ सुनने को तैयार ही नहीं हुआ । सिक्ख गुरूदेव के पास लौट आया और हुंडी लौटा दी । इस बात पर गुरूदेव का मन बहुत खिन्न हुआ । उन्होंने कहा - अच्छा यदि गंगू शाह के खाते में हमारा नाम नहीं है तो हमने भी उसका नाम अपने खाते से काट दिया है और उस अभ्यागत सिक्ख को आवश्यकता अनुसार धन देकर प्रेम से विदा किया ।

उधर दिल्ली में गंगू शाह का कुछ ही दिनों में दिवाला निकल गया और वह दिल्ली से कर्जदार होकर भागा । परन्तु जब उसे भागने के लिए कोई ठिकाना दिखाई नहीं दे रहा था तो आखिरकार वह टक्करें मारता हुआ फिर से गोइन्दवाल पहुँचा परन्तु उसको साहस नहीं हुआ कि वह गुरूदेव के समक्ष उपस्थित होता। अत: वह लंगर में सेवा करने लगा। सेवा करते करते कई माह व्यतीत हो गये। इस बार की सेवा से उसके अहं भाव की मैल धुल गई। वह प्रतिक्षण प्रायश्चित की आग में जलता हुआ हरि नाम का सुमरिन भी करता रहता। एक दिन गुरूदेव लंगर के विशेष कक्ष, जहाँ भोजन तैयार करने की प्रारम्भिक व्यवस्था की जाती थी, वहाँ आये। इस शुभ अवसर का लाभ उठाकर गंगू शाह गुरूदेव के चरणों में दण्डवत प्रणाम करने लगा। गुरूदेव दया के पुंज थे । उन्होंने उसे उठाकर फिर कंठ से लगा लिया और कहा - तू क्षमा के पात्र तो नहीं था परन्तु तेरी सेवा और प्रायश्चित ने हमें विवश किया है। अब वापस जाओ और फिर से व्यापार करो किन्तु धर्म कर्म को नहीं भूलना।

नथो तथा मुरारी

लाहौर नगर में एक धनाढ्य परिवार था । इस परिवार का इकलौता पुत्र प्रेमा जब युवावस्था में पहुँचा तो धन की अधिकता के कारण उसे बहुत से व्यसन लग गये । वह ऐश्वर्य का जीवन जीने के प्रलोभन में कुसंगत के चक्रव्यूह में ऐसा फँसा कि वहाँ से उस का निकलना कठिन हो गया । अविभावकों ने बहुत प्रयत्न किया कि किसी प्रकार उन का पुत्र उज्ज्वल चरित्र का जीवन व्यतीत करे परन्तु सब प्रयास असफल रहे । इसी मानसिक पीड़ा में उनका देहान्त हो गया । सारी सम्पति युवक प्रेमे के हाथ लग गई । अब उस पर किसी प्रकार का अंकुश तो था नहीं, वह बिना विचारे सम्पत्ति का दुरूपयोग करने लगा । कुसंगियों ने उसे अय्याशी तथा जुए की ऐसी दल दल में धकेल दिया कि वह सारा धन धीरे धीरे नष्ट करता चला गया । दूसरी तरफ शरीर को एक भयंकर संक्रामक रोग 'सूजाक' हो गया । यह रोग असाध्य माना जाता है । इस का उपचार नहीं हो सकता । इसमें रोगी को पीड़ा और कष्ट भी बहुत होता है । जब यह यौन रोग चर्म सीमा पर पहुँचा तो सभी कुसंगी संक्रामक रोग के कारण निकट नहीं आते थे और वह सदा के लिए साथ छोड़ कर भाग गये । धन तो पहले ही नष्ट हो चुका था । अब युवक प्रेमा न मरो में था न जीवित लोगों में, उसके निकटवर्ती उस को मुँह नहीं लगाते थे। इस लिए वह दर दर भटकने लगा और भिक्षा माँग कर पेट की आग बुझाने लगा। समाज से व्यंग सुनने को मिल रहे थे और स्वयँ भी पश्चाताप की आग में जल रहा था परन्तु समय हाथ से निकल गया था । अब उस के सामने एक ही रास्ता था आत्महत्या करने का। उस ने आत्महत्या के भी असफल प्रयास किये, जिससे उसके कष्ट और भी बढ़ गये । अन्त में किसी दयालु पुरूष ने उसे सुमति दी कि तुम अब किसी महापुरूष की शरण में जाओ और प्रायश्चित करो तभी तुम्हारा कल्याण होगा । कुष्ठी प्रेमे को इस बात में कुछ सार अनुभव हुआ । वह लोगों से पूछता फिरता कि वह कौन से पूर्ण पुरूष है, जिन की शरण में जाने से मेरा कल्याण हो सकता है । इतफाक से काबूल की संगत गोइन्दवाल जा रही थी तो उन को वह प्रेमा कुष्ठी मिल गया। उस का विलाप और कष्ट देखकर संगत में से कुछ सिक्खों को उस पर दया आ गई । वह उसको एक बैलगाड़ी पर बिठाकर गोइन्दवाल ले आये । प्रेमे कुष्टी ने मुख्य मार्ग पर जो गुरू दरबार को जाता था, वहाँ एक किनारे पेड़ के नीचे आसन जमाया और भजन गाने लगा । लोग उस पर दया करते हुए जीवन निर्वाह करने की आवश्यक वस्तुएँ दे देते । इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा । इस बीच कुष्ठी प्रेमे को इस बात का अहसास हो गयाअ कि कुकर्मो के प्रायश्चित के लिए यही उपयुक्त स्थान है, वह सदैव गुरू चरणों का ध्यान धर कर भजन-बंदगी में भी व्यस्त रहता और कभी कभी जब पीड़ा असहाय हो जाती तो ऊँचे स्वर में गाते हुए कहता - 'मैंने खोया हुआ रतन फिर से पा लिया है' ।

एक दिन पीड़ा से वह बहुत ऊँचे स्वर में गाने लगा । गुरूदेव ने उसकी पुकार सुनी और सेवकों से कहा जाओ, उस कुष्ठी को बाउली के पवित्र जल से स्नान करवा कर दरबार में लाओ । बस फिर क्या था, कुछ सेवक तुरन्त गये और कुष्ठी को स्नान करवाने के लिए बाउली के जल में डुबकी लगवाई । जब उसे बाहर निकाला गया तो अकस्मात् कुष्ठी निरोग होकर वापस निकला । सभी सिक्खों की गुरू वचनों पर अगाध श्रद्धा और अधिक बढ़ गई । वे देख रहे थे कि कुष्ठी प्रेमा अब कुष्ठी नहीं है, उस का शरीर सामान्य स्वस्थ युवक जैसा निरोग है । वे जल्दी ही लाल नये वस्त्रों में प्रेमे को लपेट कर गुरूदेव के समक्ष हाजिर हुए । गुरूदेव प्रेमे को देखकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा - यह युवक तो मुरारी जैसा सुन्दर है और इसे तो आपने दुल्हा बना दिया है । बस उनके मन में एक लहर उठी और उन्होंने कहा - है कोई मेरा प्यारा सिक्ख जो इस मुरारी जैसे दुल्हे को अपनी कन्या वधू रूप में प्रदान करे। यह आदेश सुनते ही एक गुरूसिक्ख भाई शीहां जी संगत में से उठे और विनती करने लगे कि मेरी सुपुत्री वर के योग्य हो गई है, यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो इस युवक का विवाह सम्पन्न कर दे । गुरूदेव ने जोड़ी को आशीर्वाद दिया और कहा तुम दोनों की गृहस्थी सफल सिद्ध हो । तभी वधू की माता को सूचना मिली कि तुम्हारी पुत्री का विवाह उस कुष्ठी के साथ निश्चित कर दिया गया है, जो गुरूदरबार के बाहर भिक्षामांगा करता था । बस फिर क्या था, वह जल्दी से गुरू दरबार में पहुँची और बहुत गिले-शिकवे भरे अन्दाज में गुरूदेव से प्रश्न किया कि मेरी पुत्री ही भिखारी-कोढ़ी के लिए रह गई थी, तब गुरूदेव ने उसे धीरज बंधाया और बहुत सहज भाव से उसे कहा - हमने तुम्हारी पुत्री का विवाह अपने पुत्र मुरारी के साथ निश्चित किया है, वह भिखारी प्रेमा कुष्ठी नहीं है । यदि तुम दुल्हे को देखना चाहती हो तो प्रत्यक्ष देख लो । जब वधू 'मथो(की माता ने वर मुरारी को देखा तो उसकी कायाकल्प हो चुका था, वह तो अब एक स्वस्थ नवयुवक दुल्हा था । तभी माता ने सन्तोष की साँस ली और गुरू आज्ञा के समक्ष सिर झुका दिया ।

उन्हीं दिनों इस सौभाग्य जोड़ी का विवाह गुरूदेव की छत्रछाया में सम्पन्न कर दिया गया । यह दम्पत्ति समर्पित होकर गुरू घर

के लँगर इत्यादि में सेवा में जुट गये और साथ साथ गुरूमति का अध्ययन करने लगे । एक समय ऐसा आया, गुरूदेव ने पाया कि मथो-मुरारी की जोड़ी पूर्ण रूप में गुरूमति का प्रचार प्रसार करने योग्य हो गई है तो उन्होंने इस दम्पत्ति को संयुक्त रूप में अपने प्रतिनिधि (मंजी) का स्थान देकर उनके पैत्तृक गाँव में भेज दिया, जिससे वे स्वतन्त्र रूप से उस क्षेत्र में सिक्खी का प्रचार कर सकें ।

पण्डित बेणी जी

पण्डित बेणी जी गाँव चूहणिया जिला लाहौर के रहने वाले थे । आप वेदान्त एवँ व्याकरण का सर्वाधिक ज्ञाता थे । आप जिस विषय पर बोलते, उसी विषय में प्रमाणों का भण्डार प्रस्तुत कर प्रतिद्वन्द्वी को निरूत्तर कर देते थे । विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करना आपकी विशेषता सी हो गई थी । जब कभी किसी विद्वान के साथ विचार गोष्ठी होती तो शर्त यही रखी जाती कि पराजित पक्ष की पुस्तकें इत्यादि ज्ञान का श्रोत जब्त कर लिया जायेगा । इस प्रकार बेणी जी कई विद्वानों को पराजित कर उनके साहित्य को जब्त करके विजयी घोषित हो चुके थे । अत: उन्होंने दिग्विजयी होने के विचार से अपने ग्रंथ ऊँटों पर लाद लिए और नगर नगर विद्वानों की खोज में निकल पड़े । काशी, प्रयाग इत्यादि कई नगरों में उनको भारी सफलता मिली, जिससे उनके पास ऊँटों से लदे ग्रन्थों का भण्डार और भी बढ़ गया। इसके साथ ही विद्या सम्बन्धी अंहकार भी बढ़ता चला गया और आत्मिक शान्ति भंग होती चली गई । अन्त में वह पँजाब अपने घर वापस आ रहे थे तो उनको ज्ञात हुआ कि व्यासा नदी के किनारे बसे नये नगर गोइन्दवाल में गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू अमर दास जी निवास करते हैं । वह पूर्ण पुरूष माने जाते हैं । यदि मैं उन से शास्त्रार्थ में विजयी हो जाऊँ तो मैं स्वयँ को दिग्विजयी घोषित कर दूँगा । इसी विचार से वह गुरू दरबार में उपस्थित हुआ और उसने गुरूदेव से आग्रह किया कि वह उससे एक गोष्ठी का आयोजन करें । उत्तर में वेद कतेब की पहुँच से परे अनुभवी ज्ञान के ब्रह्मवेता गुरूदेव ने कहा - नि:सन्देह आप की बुद्धि पुस्तकीय ज्ञान से तीक्ष्ण और चपल हो गई है, परन्तु शाश्वत ज्ञान की गरिमा उन्हें प्राप्त नहीं हुई, इस लिए वह दुविधा में भटक रहे हैं । भले ही आपने अपने पास ज्ञान का इतना बड़ा भण्डार रखा है, परन्तु तत्त्व ज्ञान से वंचित रह गये हैं ।

पण्डित वेणी जी को इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी । अत: वह जिज्ञासावश पूछने लगा कि आखिर सत्य-ज्ञान क्या है, जो मुझे प्राप्त नहीं ? उत्तर में गुरूदेव ने कहा - स्वचिन्तन ही सत्य ज्ञान है जो आप नहीं करते, जिससे चँचल मन का बोध होता है और उस पर नियन्त्रण करने के लिए आत्मा को प्रभु नाम रूपी धन से सशक्ति करना पड़ता है । इस संघर्ष में केवल प्रेम भक्ति का शस्त्र ही काम आता है अन्यथा मन केवल हठ योग के साधनों से अभिमानी होकर नियन्त्रण से बाहर हो जाता है । जब तक मन की सुक्ष्मता को नहीं समझोगे तो तब तक भटकते रहोगे । पण्डित बेणी जी कुछ गम्भीर हुए और कहने लगे - मैं शास्त्रों द्वारा बताई गई सारी विधियों के अनुसार जीवन व्यापन करता हूँ और समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् प्राप्त हुए ज्ञान से समाज में जागृति लाने का प्रयास कर रहा हूँ किन्तु आप के शिष्य (सिक्ख) शास्त्रों की विधि जप-तप-व्रत-नेम-दान-पुण्य-तीर्थ स्नान इत्यादि कर्मो पर विश्वास ही नहीं रखते तो इनको कैसे मोक्ष प्राप्ति होगी? गुरूदेव जी बोले - हम गुरू नानक देव जी द्वारा बताए पक्षी मार्ग पर चलते हैं और आप चींटी मार्ग अपनाते हैं, यह ठीक उस प्रकार है जैसे पेड़ पर लगे हुए मीठे फल को खाने के लिए पक्षी क्षण भर के उड़ान के पश्चात् पहुँच जाता है, ठीक इस के विपरीत चींटी को फल तक पहुँचने के लिए धीरे धीरे चलकर लम्बे समय के परिश्रम के पश्चात् लक्ष्य की प्राप्ति होती है । अत: कर्म-काण्ड करना चींटी मार्ग है, जब कि केवल नाम अभ्यासी होना पक्षी मार्ग है । यही विधि इस कलयुगमें प्रधान है, इसके द्वारा सहज में जनसाधारण प्रभु के निकटता प्राप्त कर सकते हैं ।

कलि महि राम नामि वडिआई ।
गुर पूरे ते पाइआ जाई ।

राग वसंत, म. 3, पृष्ठ 1176

यथा

जुग चारे नामि वडिआई होई ।
जि नामि लागै सो मुकति होवै, गुर बिनु नामु न पावै कोई । रहाउ

पण्डित बेणी जी ने गुरूदेव के वचनों का गहन अध्ययन किया और यर्थात को समझने की चेष्टा की जब सत्य का ज्ञान हुआ और दुविधा दूर हुई तो उन्होंने ने अपने द्वारा इक्ट्ठे किये गये ग्रन्थों को व्यर्थ पाया और वह जान गये कि वास्तविकता 'ढ़ाई अक्षर प्रेम के पढ़े जो पण्डित हुई' वाली बात ही शत-प्रतिशत ठीक है, अन्यथा केवल ग्रन्थों का ज्ञान दिमागी कसरत भर ही है । जिससे अभिमान के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्ति नहीं होती । उन्होंने मन के नियन्त्रण में लाने के लिए अपने समस्त ग्रन्थ व्यासा नदी में बहा दिये और कहा - न होगा मिथ्या ज्ञान और न होगा अभिमान । जब अभिमान जाता रहा तो परम पिता परमेश्वर (सचिदानंद) के बीच की अहंकार रूपी दीवार गिर गई और उनको तत्काल शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति हुई ।

भाई पारो जुल्का जी

भाई पारो जुल्का जी डला नगर के निवासी थे । आप ने श्री अंगद देव जी से दीक्षा प्राप्त की थी । जिससे आप नाम अभ्यासी पुरूष बन गये । आप कोई क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे । आप के हृदय से सदैव प्रभु चिन्तन-मनन चलता रहता था । नाम की कमाई से आप की आत्मा निर्मल हो गई और आप अभय होकर साँसारिक कार-व्यवहार में भी यथायोग्य भाग लेते रहते थे । आप अपने क्षेत्र में गुरमति का प्रचार-प्रसार भी करते । कई भूले-भटकों को गुरूदेव की शरण में पहुँचाते । आप का जीवन जन-साधारण के लिए प्रेरणा स्रोत होता। आप दीन-दुखियों की निष्काम सेवा में भी जुटे रहते । आप के लिए समस्त मानव जाति एक प्रभु की सन्तान थी । आपने किसी को भेदभाव से देखा ही नहीं, बस एक ही लक्ष्य सभी का कल्याण हो । आप एक कुलीन परिवार के जिमींदार थे, परन्तु मिलनसार इतने कि गरीब मजदूरों को भी आदर सम्मान देकर उनको बुलाते। अभिमान तो आप में लेशमात्र भी न था । जब भी अवकाश मिलता गुरू दर्शनों को गोइन्दवाल चले आते थे । एक दिन जब आप गुरूदेव के दर्शनों की अभिलाषा लेकर व्यासा नदी के किनारे पहुँचे तो नदी में बाढ़ के कारण कुछ पानी अधिक था । नदी के किनारे सैनिकों की एक टुकड़ी प्रतिक्षा में खड़ी थी कि बाढ़ का पानी कम हो जाये तो हम नावों द्वारा नदी पार करके लाहौर के लिए प्रस्थान करे । तभी पारो जी ने एक उचित स्थान देखकर बिना भय के गुरू का मन में ध्यान कर घोड़ा नदी में प्रवेश करवा दिया और देखते ही देखते बाढ़ के रहते नदी पार कर गये । यह सब दृश्य वहाँ पर खड़ा सैनिक टुकड़ी का अधिकारी अब्दुल्ला देख रहा था, वह बहुत आश्चर्य चकित हुआ, उसने भी पारो जी की नकल करने का प्रयास किया परन्तु वह बुरी तरह असफल रहा, क्योंकि पानी का बहाव बहुत तीव्र गति में था । संध्या के समय गुरूदेव से विदा लेकर जब उसी विधि अनुसार नदी पार कर के भाई पारो जी लौट रहे थे तो सैनिक अधिकारी अब्दुल्ला ने उन्हें रोक कर पूछा - आपने नदी दो बार पार की है, ऐसी कौन सी बात थी जिसके लिए आपने अपने जीवन को संकट में डालकर नदी को पार करना आवश्यक समझा । उत्तर में भाई पारो जी ने कहा - मैं अपने मुर्शद के दिदार के लिए अक्सर जाता रहता हूँ । मेरे मुर्शद और मेरे बीच यह नदी नाले कभी भी रूकावट नहीं बने । हमारी मुहब्बत हमें अपने आप रास्ता देती है । मैं तो केवल उनका ध्यान करके अल्लाह का नाम लेता रहता हूँ ।

इस पर अब्दुल्ला खान ने इच्छा प्रकट की कि मैं भी उनके दिदार करना चाहता हूँ । मुझे भी उन से मिलाओ । भाई पारो जी ने उसे समझाया कि वहाँ इस रूप में जाने से कोई लाभ नहीं होगा । उस के लिए आपको एक सैनिक अधिकारी से एक साधारण व्यक्ति का रूप धारण करना होगा क्योंकि नम्र बन कर और झुक कर जाने से प्राप्तियाँ होती हैं । अबदुल्ला ने बात को धैर्य से समझा और कहा ठीक है, आप जब कल मुर्शद के दिदार को जाओगे तो मुझे भी साथ लेकर जाना। दूसरे दिन भी बाढ़ तो वैसी की वैसी थी । जब भाई पारो जी आये तो अबदुल्ला ने अपनी सेना की रहनूमाई अपने बेटे को सौंप दी और स्वयँ भाई पारो जुल्का जी के साथ उसी विधि अनुसार नदी में उतर गये और देखते ही देखते नदी सहज में ही पार करके गोइन्दवाल पहुँचे । पारो जी ने गुरूदेव से हाकिम अबदुल्ला का परिचय करवाया । उन्होंने उस की जिज्ञासा तथा श्रद्धा देखकर उसे कंठ से लगाया और आध्यात्मिक उपदेश दिया। अबदुल्ला भी गुरूदेव के व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित हुआ और गुरूदेव के चरणों में रहने की इच्छा प्रकट की । गुरूदेव ने सहर्ष उसको अपने सानिध्य में रहने की अनुमति दे दी । इस प्रकार हाकिम अबदुल्ला गुरूदेव की छत्रछाया में बंदगी करने में जुट गया । वह धीरे धीरे नाम अभ्यासी बन गया और लगा अल्लाह अल्लाह करने । लोगों ने जब उस के आगध प्रेम को देखा तो उसे अल्लाह का यार कहना शुरू कर दिया जो बाद में उनके नाम में बदल गया और उन का नाम अल्लाह यार खान हो गया।

गुरूदेव भाई पारो जुल्का जी की निष्ठा भक्ति से इतने प्रभावित हुए कि एक दिन उन को कहा मैं तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता हूँ । मेरे पश्चात अगले गुरू आप होंगे । यह सुनकर भाई पारो जी ने बहुत विनम्रभाव से गुरूदेव के चरणों में प्रार्थना की कि मुझे आप सेवक ही रहने दें । यह भारी उत्तरदायित्व सम्भालना मेरे बस की बात नहीं । इस पर गुरूदेव ने उनको परम हंस के अलंकार से सम्मानित किया और उनके तथा हाकिम अबदुल्ला जी को अपना प्रतिनिधि स्थापित करके उन्हें उनके पैत्तृक गाँव में गुरमति (सिक्खी) प्रचार प्रसार के लिए भेज दिया अर्थात मंजीदार नियुक्त किया ।

बीरबल का गुरुदेव से मतभेद

बीरबल भट्ट समुदाय से एक राजस्थानी पण्डित था । राजा मान सिंह ने इस चतुर व्यक्ति का परिचय सम्राट अकबर से करवाया । अकबर इस व्यक्ति की तीक्ष्ण बुद्धि से बहुत प्रभावित हुआ और उसने बीरबल को अपने रतनों में सम्मिलित करके इसे नौवें रतन की उपाधि से सम्मानित किया। प्राचीनकाल में भट्ट कवियों को राजा-महाराजों के दरबार में कविता पाठ अथवा अन्य कार्यक्रमों का प्रदर्शन करके उपहार स्वरूप धन की प्राप्ति होती थी । सर्वप्रथम बीरबल की जीविका का भी यही एकमात्र साधन था । इनका ध्यान अपने जज्मान को प्रसन्न करने पर ही केन्द्रित रहता था जो कि इन के सँस्कारों में इसे विरासत में मिला एक विशेष प्रकार का स्वभाव था ।

राजदरबार में सभी को प्रसन्न करने की चेष्टा में नई नई बातें बनाना इनका मुख्य कार्य था । एक दिन सम्राट अकबर बीरबल से किसी चुटकले पर बहुत प्रसन्न हुए तो उसने बीरबल को कहा - आज कुछ माँग लो । इस पर बीरबल ने वही विरासत में मिली आदत अनुसार माँग लिया कि मुझे स्वर्ण हिन्दु परिवारों के विवाह पर पाँच रूपये प्रति विवाह मोखं वसूल करने का अधिकार होना चाहिए । सम्राट

को इस में कोई आपत्ति की बात दिखाई नहीं दी । अत: उन्होंने अपना मान बढ़ाने के लिए अनुमति दे दी । इस प्रकार बीरबल प्रशासनिक शक्ति से कर के रूप में अपने लिए बहुत भारी राशि इक्ट्ठी करने में सफल होने लगा।

उन्हीं दिनों बलोचिस्तान के कबैली क्षेत्र में विद्रोह फैल गया । सम्राट अकबर ने विद्रोह का दमन करने के लिए सेना भेजी, किन्तु वह असफल रही । फिर उसने बीरबल के नेतृत्त्व में और कुमुद भेजी । बीरबल जब गोइन्दवाल पहुँचा तो वहाँ उस को गुरू अमर दास जी की कीर्ति सुनने को मिली । उसके मन में विचार आया कि यहाँ गुरू अमर दास जी का जनता में मान-सम्मान है । अत: इन्हीं के माध्यम से लोगों से मैं अपने लिए पाँच रूपये प्रति विवाह के हिसाब से मोख रूप में एकत्र करने में सफलता प्राप्त करूँ । बीरबल ने गुरूदेव को संदेश भेजा कि मुझे अधिकार प्राप्त है कि मैं स्वर्ण वर्ण के हिन्दुओं से जजिया के रूप में पाँच रूपये प्रति परिवार उगाह सकता हूँ । अत: आप मेरी इस कार्य में सहायता करें और मुझे अपने सेवकों से धन इक्ट्ठा करके दें ।

उत्तर में गुरूदेव जी ने संदेश भेजा कि यह फकीरों का दर है, यहाँ से आप बलपूर्वक कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते । पहली बात तो यह है कि हम हिन्दू नहीं हैं क्योंकि हम वर्ण आश्रम को नहीं मानते । दूसरी बात यह हैं कि हम जजिये को गरीबों का शोषण समझते हैं । अत: हम इस प्रकार के निराधार कर अथवा महसूल को कदाचित नहीं देंगे । हाँ, यदि नम्र बनकर लंगर में भोजन करना चाहो तो आप का सभी सेना सहित स्वागत है । यह दो टूक उत्तर सुनकर बीरबल का माथा ठनका । उसने निर्णय लिया कि चलो सेना को ही भोजन करवा कर देख लेते हैं । इतनी बड़ी सेना के लिए खाद्यान्न कहाँ से लायेंगे । इस प्रकार रात्रि के भोजन के समय समस्त सेना की टुकड़ी, जिनकी संख्या हजारों में थी, लंगर में प्रवेश कर गई और भोजन के लिए पंक्तियों में सज गई । जैसे ही गुरूदेव को संदेश मिला वह स्वयँ लंगर में पधारे और उन्होंने अपने हाथों से लंगर वितरण में सहायता करनी प्रारम्भ कर दी । बस फिर क्या था, प्रकृति से ऐसी बरकत मिली कि भोजन समाप्त होने पर ही नहीं आया । सभी ने मन इच्छित भोजन किया, किन्तु भण्डार वैसा का वैसा ही रहा । यह आश्चर्यजनक कौतुक देखकर सभी मन ही मन प्रसन्न हुए परन्तु बीरबल को किसी ने बहका दिया कि इनके पास एक विशेष रसायन है जिससे स्वर्ण तैयार करते हैं और उसी धन के बल पर यह लंगर चलाते हैं । इस पर बीरबल ने तथाकथित रसायन की माँग कर दी कि आप हमें वह रसायन दे जिससे आप स्वर्ण तैयार करते हैं । उत्तर में गुरूदेव ने कहा - हमारे पास तो केवल प्रभु नाम रूपी रसायन है, जिसको पी कर सदैव व्यक्ति हर्ष-उल्लास में रहता है और उसकी सभी तृष्णाएं भी समाप्त हो जाती है । यदि तुम्हें इच्छा हो तो वह तुम्हें दे सकते हैं । यह उत्तर सुनकर बीरबल बौखला गया और कहने लगा आप मेरी शक्ति का अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं । मैं चाहूँ तो सभी कुछ बलपूर्वक प्राप्त कर सकता हूँ । गुरूदेव के मुखारविन्द से निकला, वह समय कभी नहीं आयेगा । उसी क्षण बीरबल को संदेश मिला, बहुत जल्दी कबैली क्षेत्र में पहुँचना है, रूको नहीं । बीरबल विवशता में आगे बढ़ गया परन्तु कहता गया कि मैं लौटते समय निपट लूँगा । जब यह बात गुरूदेव को बताई गई तो उन्होंने कहा वह कभी लौटेगा ही नहीं । बीरबल कबैली क्षेत्र में युद्ध में मारा गया।

सम्राट अकबर को जेठा जी ने सन्तुष्ट किया

सम्राट अकबर बहुमुखी प्रतिभा का स्वामी तथा विवेक बुद्धि वाला था । भले ही बाल्यकाल में वह स्कूली ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाया क्योंकि उसके पिता हुमायुं पराजित होने के कारण कहीं स्थिरता का जीवन व्यापन नहीं कर सके थे। परन्तु अकबर नम्रता तथा मधुरता के विशेष गुणों के कारण लोकप्रिय बनता चला गया । न्याय-इन्साफ को वह प्राथमिकता देता था । इस लिए उस का प्रशासन धीरे धीरे दृढ़ होता चला गया । एक बार उसके दरबार में कुछ रूढ़िवादी कट्टरपंथियों का प्रतिनिधिमण्डल पहुँचा और न्याय के लिए पुकार करने लगा कि हम सनातन हिन्दू हैं, हमारे जीवन में कर्मकाण्ड अनिवार्य है परन्तु गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी अमर दास जी एक नई प्रथा चला रहे हैं, जिससे वह हमारे कर्मकाण्डों पर गहरी चोट कर रहे हैं । वह हमारी प्राचीन प्रथाओं का परिहास करते हैं । उन का कहना है कि इन कर्मो के करने से समय और धन व्यर्थ नष्ट करना है क्योंकि इस से किसी भी उद्देश्य की सिद्धि होनी असम्भव है । उनका मानना है कि शरीर द्वारा किये गये कार्य आध्यात्मिक दुनिया में गौण हैं । वहाँ तो हृदय द्वारा किये गये कार्य ही फलीभूत होते हैं । इस प्रकार ये लोग हमारे प्रत्येक कार्यो में त्रुटियाँ बताकर समाज में पण्डित अथवा पुरोहित के महत्त्व को समाप्त कर रहे हैं । जिस से हमारी जीविका में बहुत बाधायें उत्पन्न हो गई हैं और हम कहीं के नहीं रहे हैं ।

अकबर ने सभी आरोप ध्यानपुर्वक सुने और उसने पाया कि यह आरोप नहीं बल्कि समाज का शोषण करने वालों द्वारा बनाया गया एक महापुरूष के प्रति षड्यन्त्र है, जिससे वे राजबल से सत्य का दमन करना चाहते हैं । अत: उसने उस प्रतिनिधिमण्डल को धैर्य बंधाया और कहा - मैं इस विषय में बहुत गम्भीर हूँ और दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् कोई निर्णय करके न्याय करूँगा । इस प्रकार अकबर ने गुरूदेव को संदेश भेजा कि आप स्वयँ हमें दर्शन दें अथवा अपना कोई प्रतिनिधि भेजें जिससे पण्डित वर्ग के आरोपों का समाधन किया जा सके । उत्तर में गुरूदेव ने अपने दामाद जेठा जी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके लाहौर नगर भेजा । अकबर उन दिनों अपने चचेरे भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम द्वारा की गई बगावत का दमन करने के विचार से पँजाब (लाहौर) आया हुआ था । यह घटना सन् 1566 के लगभग की है । अकबर ने एक विशेष गोष्टि के विचार से प्रतिद्वन्द्वी पक्षों को आमने-सामने बैठा दिया और पण्डित वर्ग को आरोपों की सूची पढ़ने को कहा । पण्डितों ने पहले आरोप में यह कहा कि इन लोगों ने मनु स्मृति के बनाये विधान को रद्द कर दिया है और उनके द्वारा बनाये वर्ण आश्रम को ठुकरा कर समाज को खिचड़ी जैसा बना दिया है । यदि इसी प्रकार समाज

को दुषित किया गया तो विद्वान (पण्डित) और मूर्ख में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा । यह लोग पण्डितों को सामान्य व्यक्ति ही मानते हैं । उनके लिए कोई विशेष स्थान आदर सम्मान के लिए नहीं देते ।

उत्तर में गुरूदेव के प्रतिनिध भाई जेठा जी ने कहा – हम गुरू नानक देव जी द्वारा दर्शाये मार्ग पर चलते हैं । उन्होंने समाज का वर्णीकरण नहीं माना । उन की दृष्टि में सभी मानव समानता का अधिकार रखते हैं । जन्म से कोई छोटा बड़ा नहीं हो सकता । बड़प्पन व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर करता है । इसी संदर्भ में वर्तमानकाल के गुरूदेव श्री गुरू अमरदास जी का कथन है –

जाति का गरबु ना करीअहु कोई ।
ब्रह्मु बिंदे सो ब्राह्मणु होई ।
जाति का गरबु न करि मूरख गवारा ।
इसु गरब ते चलहि बहुतु विकारा । नहाउ ।
चारे वरन आखै सभु कोई ।
ब्रह्मु बिंद ते सभ ओपति होई ।
माटी एक सगल संसारा ।
बहु बिधि भाांडे घड़ै कुमाःरा ।

भैरउ, म. 3, पृष्ठ 1128

भाव यह है कि किसी भी व्यक्ति को स्वर्ण जाति का झूठा अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा विचारने से व्यक्ति आध्यात्मिक प्राप्तियों से वंचित रह जाता है और समाज में भी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं । छोटा बड़ा बनाना यह प्रभु ने अपने हाथ में रखा है ।

सम्राट अकबर इस उत्तर को सुनकर सन्तुष्ट हुआ और कहने लगा कि मैं भी तो यही चाहता हूँ कि कोई किसी से जाति–पाति के मनघंड़त नियमों से घृणा न करें और सभी आपस में प्रेम से रहें । इस पर पण्डितों से पूछा गया कि आपका दूसरा आरोप क्या है ? पण्डितों ने बड़े सोच विचार के बाद कहा – हजूर, यह लोग स्त्रियों को बराबर का स्थान देते हैं । विधवा विवाह के लिए आज्ञा देते हैं और कहते हैं कि विधवा को सती नहीं होना चाहिए अथवा किया जाना चाहिए। बात यहाँ तक ही नहीं सीमित रह जाती, यह लोग तो नवविवाहिता को भी घूंघट नहीं निकालने देते और कहते हैं कि सुसर तथा जेठ पिता व भाई समान हैं, उनसे घूंघट कैसा ?

उत्तर में भाई जेठा जी ने कहा – हमारे गुरूदेव ने नारी जाति पर अमानवीय अत्याचारों को देखा है । अतः वह समाज की इस बुराई का कलंक मिटा देना चाहते हैं । इस बारे में उनका विचार है –

सतीआ एहि न आखीअनि जो मड़िआ लगि जलनि ।
नानक सतीआ जाणीअनि जि बिरहे चोट मरनि ।
भी सो सतीआ जाणीआनि, सील संतोखि रहंनि ।
सेवनि साई आपणा, नित उठि समाःलानि ।

सूह म. 3 पृष्ठ 787

इसका भाव यह है कि विधवा नारी को बलपूर्वक अथवा फुसलाकर पति की चिता पर जला डालने से वह सती नहीं हो जाती । सती तो वह है जो पति की याद में संयमी, सन्तोषी, निष्कामी जीवन जी कर चले और पति के वियोग की पीड़ा में सदाचारी जीवन जीते हुए प्रभु के कार्यो पर सन्तुष्टि व्यक्त करे ।

सम्राट ने कहा – इस बात में भी तथ्य है । यदि पुरूष तीन अथवा चार तक विवाह कर सकता है तो स्त्री को विधवा होने पर भी पुनः विवाह की अनुमति क्यों नहीं दी गई । वास्तव में यह अन्याय है । न्याय तो यही होगा कि कम से कम विधवा स्त्री को पुनः विवाह करने का प्रावधान होना चाहिए और रही बात सती प्रथा की तो यह बात भी समाज पर कलंक है कि जीवित प्राणी को बिना किसी दोष के उसे जीवित जला दिया जाए । ऐसे अत्याचार को हम कानून बनाकर उसकी रोकथाम करेंगे । इस के लिए समाज में जागृति लाई जानी चाहिए। जहाँ पर पर्दे का प्रश्न है । पर्दा किसी हद तक तो ठीक है परन्तु बिना कारण जरूरत से अधिक पर्दा भी समाज में बुराईयाँ ही उत्पन्न करता है अथवा साधारण जीवन जीने में बहुत सी कठिनाईयाँ ही कठिनाईयाँ आड़े आती है ।

इस बार पण्डितों ने कहा – हजूर! यह लोग शास्त्र तथा वैदिक परम्पराओं को तिलांजली दे रहे हैं । यह न मूर्ति पूजा करते हैं और न ही देवी देवताओं की पूजा करते हैं । इन्होंने गायत्री मंत्र के स्थान पर किसी नये मंत्र की उत्पत्ति कर ली है और तीर्थ यात्राओं इत्यादि को निष्फल कर्मकाण्ड बताते हैं । उत्तर में भाई जेठा जी ने कहा – गुरू नानक देव जी का हमें आदेश है कि प्रभु अर्थात परब्रह्म परमेश्वर केवल एक और केवल एक ही है, उसका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है क्योंकि प्रभु सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है, इसलिए उसे ही एक सर्वोत्तम शक्ति के रूप में बिना मूर्ति के पूजते हैं और उसके बदले में हम किसी भी देवी–देवताओं की कल्पना भी नहीं करते । रही बात गायत्री मंत्र की तो गुरू नानक देव जी के कथन अनुसार गायत्री केवल सूर्य की उपासना का मंत्र है जो कि केवल एक ग्रह मात्र है । उस जैसे करोड़ों सूर्य इस ब्रह्माण्ड अथवा आकाश गँगा में विद्यमान हैं । अतः हम इन सभी सूर्यो के निर्माता, जिसे हम अकाल पुरूष कहते हैं, के पुजारी हैं और हमारा मंत्र उस दिव्य ज्योति परब्रह्म परमेश्वर की स्तुति में, उस की परिभाषा के रूप में है जिसे हम मूलमंत्र कहते हैं । हमारे गुरूदेव के विचार से तीर्थ स्थान वही होता है जहाँ संगत मिलकर प्रभु स्तुति करे अथवा कोई पूर्ण पुरूष मानव

कल्याण के कार्य करे ।

सम्राट अकबर इन उत्तरों से बहुत प्रसन्न हुआ और वह कहने लगा कि इस्लाम में भी अल्लाह को एक ही मान कर उसकी बिना मूर्ति के इबादत की जाती है, किसी भी फरिश्ते इत्यादि पर इमान नहीं लाया जाता ।

सम्राट ने पुन: कहा – मैं ऐसे महान मुर्शद (गुरू जी) के दीदार करना चाहूँगा और उसने पण्डितों के आरोप पत्र को तुरन्त रद्द कर दिया । इस प्रकार भाई जेठा जी गुरूदेव के प्रतिनिधि के रूप में अपना पक्ष प्रस्तुत करने में सफल हुए और सम्राट को सन्तुष्ट करके वापिस लौट आये ।

सम्राट अकबर गुरू दरबार में

लाहौर नगर से आगरा के लिए वापिस लौटते समय रास्ते में गोइन्दवाल नगर पड़ता था । अत: अकबर ने मन बनाया कि गोइन्दवाल रूक कर श्री गुरू अमर दास जी के दर्शन किये जायें और इस भेंट से उनसे प्रत्यक्ष विचारविमर्श करने का शुभ अवसर प्राप्त हो सकता है । अत: उसने गुरूदेव को संदेश भेजा कि मैं आपके समक्ष हारिज होने के लिए आ रहा हूँ । जब वह गोइन्दवाल पहुँचे तो शाही कर्मचारियों ने रेशमी चादरें रास्ते में बिछा दी किन्तु सम्राट ने तुरन्त वे चदरे अपने हाथों से हटा दी और जूता भी उतार दिया और नंगे पाँव गुरू दरबार की ओर चल पड़ा । इस पर उसने अधिकारियों को कहा कि किसी महान व्यक्तित्त्व से भेंट करने जाना हो तो नम्र बन कर जाना चाहिए । इससे पहले इसी दरबार में हाजरी भरते समय मेरे पिता से यह भूल हुई थी कि वह शाही ठाठ-बाठ का प्रदर्शन करते हुए आये थे । इसलिए उनको खाली हाथ लौटना पड़ा था । खैर ...... अब वही भूल दोबारा न दोहराई जाये ।

जब गुरूदेव को संदेश मिला कि अकबर आ पहुँचा है, वह आपसे भेंट करना चाहता है। उसे दरबार में हाजिर होने की आज्ञा प्रदान करें तो गुरूदेव ने कहा – हमारे यहाँ गुरू मर्यादा है, दर्शन उसी को होंगे जो पहले गुरू के लंगर में पंक्तियों में बैठ कर भोजन ग्रहण करेंगे । उत्तर पाते ही सम्राट ने अपने अधिकारियों सहित लंगर में प्रवेश करके संगत के साथ इक्ट्ठे बैठ कर भोजन किया। भोजन करते समय सम्राट तथा उसके अधिकारियों ने पाया कि भोजन अति स्वादिष्ट है, प्रत्येक ग्रास के साथ भोजन में भिन्न भिन्न प्रकार के व्यजनों को चखने का आभास होता है । इस पर सम्राट आश्चर्यचकित हुआ और उसने लंगर की मर्यादा-अनुशासन देखा तो वह और भी प्रभावित हुआ । वह विचारने लगा कि बिना भेदभाव के सभी वर्णो के लोगों को एक सम भोजन एक ही पंक्ति में मिलता है, यहाँ राजा-रंक, ऊँच-नीच, पुरूष नारी इत्यादि का कोई भेद नहीं रखा जाता । इस प्रकार के आदर्श समाज की मैं कल्पना किया करता था और चाहता भी हूँ कि मेरे राज्य में सभी मिलजुल कर रहें । कोई किसी से घृणा न करें। परन्तु यहाँ तो सभी कुछ साकार दृष्टिगोचर हो रहा है । वह गुरू के लंगर से बहुत प्रभावित हुआ और फिर गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुआ । वहाँ उसने बहुत सी वस्तुएँ श्रद्धा सुमन रूप में प्रस्तुत की । गुरूदेव उस की नम्रता पर रीझ उठे और उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि यदि तुम अपनी प्रजा के सेवक बन कर राज्य करोगे तो इतिहास में तुम्हारा नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा । इस पर सम्राट अकबर कहने लगा कि गुरूदेव मैं सदैव न्याय-इन्साफ पर विशेष बल देता हूँ और चाहता हूँ कि जनता आपस में मिलजुल कर रहे और उसके लिए मैंने एक नये धर्म की स्थापना का प्रयास भी किया है और उस धर्म का नाम 'दीने अल्लाही' रखा है । जैसा कि नाम से विदित होता है कि मेरा विचार था कि समाज में हिन्दू मुस्लिम का मतभेद समाप्त हो जाए और सभी नेक इन्सान बनकर जीवन व्यतीत करें और समाज में धर्मनिरपेक्षता का बोलबाला हो । तभी गुरूदेव ने सम्राट पर प्रश्न किया कि आपने यहाँ पर क्या देखा है ? उत्तर में सम्राट ने कहा कि मैं तो कोरी कल्पना करता हूँ जिसे चाहने पर भी साकार रूप नहीं दे सकता परन्तु आपके यहाँ तो सब कुछ व्यवहारिक रूप में साकार होकर दृष्टिमान हो रहा है । गुरूदेव ने सम्राट को समझाते हुए कहा – जहाँ सत्य होगा वहीं वास्तविक धर्म होगा और धर्म कभी घृणा करना नहीं सिखाता । धर्म का वास्तविक अर्थ है, कुछ आदर्श नियमों को स्वयँ पर लागू करना, जिससे सब का चरित्र निर्माण हो और हम एक अच्छे नागरिक बनें । जो व्यक्ति इस रहस्य को जान लेता है, वही वास्तव में धर्मी पुरूष होता है । अन्यथा सब ढोंग होकर रह जाता है, जब तक जीवन में मानवता की खुशबू उत्पन्न नहीं होती ।

अकबर इस विचारविमर्श पर बहुत सन्तुष्ट हुआ और गुरूदेव से प्रश्न करने लगा कि आपके चेहरे पर इतना जलाल (तेज) क्यों है ? आप क्या सेवन करते हैं ? उत्तर में गुरूदेव ने कहा – वृद्धावस्था है, दाँतों के अभाव के कारण 'ओगरा (भूनी हुई गेहूँ का चूर्ण) ही सेवन करते हैं, जहाँ तक तेज का प्रश्न है, यह तो केवल हरि नाम रूपी अमृत रस सदैव पान करते रहने से है । अकबर ने 'ओगरा' सेवन करने की इच्छा प्रकट की । गुरूदेव ने बड़े पैमाने पर ओगरा तैयार करवा करके अकबर के शिविर में भेज दिया । जब वे लोग 'ओगरा' सेवन करने लगे तो उन्होंने पाया कि इस रहस्यमय चूर्ण में अनेकों प्रकार के व्यजनों के स्वाद विद्यमान हैं । सभी अधिकारी अनुमान लगाते रहे कि इस चूर्ण में कौन कौन सी वस्तुएँ अथवा जायकेदार मसाले डाले गये होंगे ?

अकबर ने अगले दिन गुरूदेव से आज्ञा माँगी और अपनी तरफ से एक पट्टा भेंट किया, जिसमें कुछ गाँव की भूमि लंगर के कार्यो के लिए थी । परन्तु गुरूदेव ने उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और कहा – लंगर सदैव संगत के धन से ही चलाए जाते हैं । लंगर में साधारण जनसमुह अपना योगदान देने का अधिकार रखते हैं । यदि आप से यह भूमि लंगर के लिए प्राप्त कर ली जाती है तो यह लंगर गुरू संगत का नहीं रह जाएगा बल्कि प्रशासनिक लंगर कहलाएगा। अत: हम यह भूमि का पट्टा स्वीकार नहीं कर सकते । इस पर अकबर ने विनम्र भाव से प्रार्थना की – हे गुरूदेव ! मेरी तरफ से भी कुछ भेंट तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी । मैं भी आपका

मुर्शद हूँ । आप मुझे भी निवाजे और उसने एक युक्ति से गुरूदेव को मना लिया और कहा कि मैं यह पट्टा लंगर के लिए नहीं, आपकी बेटी के लिए एक भाई की ओर से स्नेहपूर्वक उपहार में देना चाहता हूँ । इस पर संगत में कुछ बुर्जुग सिक्खों ने गुरूदेव से आग्रह किया कि वह सम्राट को निराश न करें और पट्टा बीबी भानी सुपुत्री गुरू अमर दास जी के नाम से ले लिया गया।

गोइन्दवाल की बाउली गंगा सम

श्री गुरू अमर दास जी के दरबार में एक दिन उनका एक पुराना मित्र मिलने आया । इस व्यक्ति की गुरूदेव के साथ मित्रता की स्थापना उन दिनों हुई थी जब आप प्रतिवर्ष गँगा स्नान के लिए जाया करते थे । प्राय: आप इस मित्र के साथ मिलकर ही यात्रा पर निकलते थे । यह भक्तजन गुरूदेव का वर्तमान वैभव देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था । उसने गुरूदेव से आग्रह किया कि मैं गँगा स्नान के लिए जा रहा हूँ । आप भी मेरे साथ गँगा स्नान का कार्यक्रम बना कर चले, क्योंकि हम पुराने तीर्थ यात्री मित्र हैं । उत्तर में गुरूदेव ने उस भक्तगण को बहुत समझाया कि समय अनुसार व्यक्ति को बदल जाना चाहिए । केवल गँगा स्नान से कुछ होने वाला नहीं है, वास्तविक स्नान शरीर का नहीं आत्मा का होता है । जब तक उसकी पवित्रता की ओर ध्यान नहीं दिया जाए तो शरीर का स्नान व्यर्थ चला जाता है । अत: आत्मा की शुद्धि के लिए व्यक्ति को शाश्वत ज्ञान की आवश्यकता होती है, जो केवल और केवल सतगुरू के दरबार से ही प्राप्त होता है । इसी ज्ञान को आधार बनाकर व्यक्ति भवसागर से पार हो सकता है । किन्तु भक्तगण हठी था, वह कहने लगा कि मैं जीवनभर प्रतिवर्ष गँगा स्नान पर जाता रहा हूँ, अब जीवन के अन्तिम दिनों में यह नियम नहीं छोड़ सकता । इस पर गुरूदेव ने उसे कहा कि आप कृपया हमारी तूंबड़ी (कड़वा फल) साथ ले जाएं और हमारे स्थान पर सभी तीर्थो पर इसे स्नान करवा कर लौटा लाए । यह गँगा भक्त गुरूदेव से तूंबड़ी लेकर तीर्थयात्रा पर चला गया । इस बार उसने श्रद्धावश बहुत से अन्य तीर्थो की भी यात्रा की और प्रत्येक स्थान पर स्वयँ स्नान किया और गुरूदेव की तूबड़ी को भी स्नान करवाता रहा । जब लम्बे समय पश्चात् वह घर को लौटा तो रास्ते में गोइन्दवाल में उसने तूबड़ी गुरूदेव को लौटा दी और कहा कि मैं आपकी आज्ञा अनुसार इसे बहुत से तीर्थो पर स्नान करवा के लाया हूँ । गुरूदेव ने कहा – आपने बहुत ही परोपकार किया है । हम इसे अभी संगत में प्रसाद रूप में बँटवा देते हैं क्योंकि यह तूबड़ी बहुत से तीर्थो के स्नान के पश्चात् पवित्र हो गई । है । गुरूदेव ने आदेश दिया और तूबड़ी छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर सँगत में वितरण कर दी गई, परन्तु यह क्या! तूबड़ी तो वैसी की वैसी कड़वी थी, किसी से भी खाई न गई और सभी ने थू थू करके फैंक दी । अब प्रश्नवाचक दृष्टि से गुरूदेव ने उस गँगा भक्त की ओर देखा और कहा – आपने तो हमारी तूड़बी को अनेकों तीर्थो पर स्नान करवाया था, फिर यह कड़वी कैसे रह गई । इस की कड़वाहट मिठास में परिवर्तित होनी चाहिए थी । इस पर उस भक्तगण को कोई उत्तर नहीं सूझा और वह जीवन का रहस्य जानने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगा । गुरूदेव ने अपने प्रवचनों में कहा – केवल शारीरिक स्नान आध्यात्मिक दुनिया में कोई महत्त्व नहीं रखता, जब तक उसमें हरिनाम रूप अमृत नहीं मिश्रित किया जाता । कोई भी वस्तु तभी पवित्र होती है,जब वह हरिनाम के वातावरण में पहुँच जाती है । इसके लिए हमें अपने हृदय रूपी मन्दिर में हरिनाम रूपी जल से स्वच्छ करना ही होगा, नहीं तो हमारे समस्त कार्य केवल कर्मकाण्ड बनकर निष्फल होकर रह जायेंगे और हमारा परिश्रम व्यर्थ नष्ट हो जाएगा ।

काइआ हरि मंदरु हरि आपि सवारे ।
तिसु विचि हरि जीउ वसै मुरारे ।

पृष्ठ 1059, राग मारू

इस भक्तगण की जिज्ञासा तीव्र हुई और वह गुरूदेव के सानिध्य में रह कर उनके प्रवचनों को श्रवण करने की इच्छा से गोइन्दवाल ठहर गया । अगली प्रभात को जब वह स्नान के लिए बाउली में डुबकी लगा रहा था तो उसने पाया कि उसके पाँव के नीचे कोई बर्तन आ गया है, जैसे ही उसने उस बर्तन को बाहर निकाला तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, वह वही करमण्ड था जो लौटते समय जल भरते हुए गँगा की तीव्र धारा में हाथ से छूटकर बह गया था । इस पर गँगा भक्त ने उसको ध्यान से पहचाना । उस करमण्ड पर उसी का नाम लिखा था । वह गुरूदेव के चरणों में लौटा और इस रहस्य को जानने की उत्सुकता प्रकट की । गुरूदेव ने अपने प्रवचनों में स्पष्ट किया कि सभी आध्यात्मिक प्राप्तियाँ हृदय की भावनाओं से सम्बन्ध रखतीं हैं, जो व्यक्ति जिस भावना से आराधना करेगा, प्रभु अपने भक्त को उसी रूप में प्रकट होकर मिलते हैं । आज आपने बाउली में स्नान करते समय गँगा जी का ध्यान करके डुबकी लगाई थी तो प्रभु ने आपके लिए बाउली को गँगा बना दिया । यह सब आपकी भावना का प्रतिफल है।

भाई फिराया जी

पँजाब की दो नदियों के स्थल (सतलुज और ब्यास के बीच में बसा हुआ क्षेत्र) को दोआबा कहते हैं । यह क्षेत्र उपजाऊ है, अत: यहाँ समृद्धि भी है और जनसंख्या भी अधिक है । श्री गुरू अमरदास जी के जीवनकाल में यहाँ गोरखनाथ के शिष्यों (योगियों) के कई मठ थे, जिससे वह अपने योग मत का प्रचार करते थे । वास्तविकता यह थी कि जनसाधारण तो गृहस्थ त्याग नहीं सकता था, किन्तु कुछ निखटू लोग इनके चंगुल में फँस जाते थे और वह इन योगियों के प्रतिनिधि बनकर गाँव गाँव घूमकर भिक्षा माँग कर अथवा लोगों को योगियों की चमत्कारी

शक्तियों का भय दिखाकर खाद्यान्न अथवा धन इक्ट्ठा करते रहते थे । इस प्रकार योगी लोग किसानों और मजदूरों का शोषण करवाते रहते थे । किन्तु बदले में ये लोग इन के किसी काम नहीं आते थे । न तो ये लोग किसी को आध्यत्मिक ज्ञान देकर उनके कल्याण की बात सोचते थे और न ही उनके साँसारिक व्यवहार में किसी प्रकार के सहायक होते थे अपितु अपनी जीविका का बोझ भी इन्हीं गृहस्थियों पर डालकर उनको हीन दृष्टि से देखते थे और स्वयं को त्यागी बताकर एक आदर्श व्यक्ति घोषित करते थे । भाई फिराया जी इस क्षेत्र के निवासी थे । वह योगियों द्वारा जनता का शोषण और उनके द्वारा तिरस्कार से बहुत खिन्न हुआ करते। वह सदैव विचारमग्न रहते कि मानव जीवन का जो मुख्य उद्देश्य है, उसकी प्राप्ति के मार्ग में ये योगी लोग बाधक हैं, क्योंकि ये स्वयँ भ्रमित हैं। इनका मुख्य लक्ष्य उदरपूर्ति है, किसी का कल्याण नहीं। अत: वह पूर्ण गुरू की खोज में निकल पड़ें। प्रभु ने इनको विवेक बुद्धि दी हुई थी, इसलिए इन की पैनी दृष्टि से पाखण्डी बच नहीं सकते थे। सत्य की खोज के पाधी को एक दिन एक व्यक्ति मिला, जिसका नाम कटारा जी था । यह भी आत्मिक शान्ति के लिए विभिन्न स्थानों पर भटक रहे थे । दोनों का लक्ष्य एक ही था । अत: धीरे धीरे मित्रता बढ़ती गई । एक दिन इनकी खोज रंग लाई । किसी व्यक्ति ने इन्हें बताया कि पँजाब में शाही सड़क के ऊपर स्थित गोइन्दवाल में एक महापुरूष निवास करते हैं जो कि गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी हैं और पूर्ण पुरुष हैं । भाई फिराया जी ने कटारा जी को बताया कि यह स्थान तो हमारे जिले के निकट ही पड़ता है । मैंने इनकी स्तुति पहले भी सुनी है, परन्तु ध्यान नहीं दिया क्योंकि मैंने कई बार धोखा खाया है और पाया है 'ऊँची दुकान फीका पकवान' वाली कहावत अनुसार सब कुछ छल-कपट होता है, परन्तु इस बार उन्होंने अपने मित्र कटारा जी के साथ गोइन्दवाल जाने का निश्चय किया । गोइन्दवाल में उन्होंने अपनी विचारधारा के विपरीत पाया । यहाँ पर अभ्यागत का स्वागत होता है और हर प्रकार की सुख सुविधा देकर दिन रात निष्काम सेवा की जाती है । ये लोग गोइन्दवाल के वातावरण से बहुत प्रभावित हुए । इन्होंने पायाकि प्रत्येक सिक्ख मन ही मन प्रभु भजन में लीन रहता है और हाथों से बिना भेदभाव जनसाधारण की सेवा में तत्पर रहता है, किसी से कोई अभिलाषा नहीं की जाती । इस सुखमय, भयरहित वातावरण में दोनों भक्तजनों ने कुछ दिन व्यतीत किये और फिर गुरूदेव के दर्शनों के लिए उपस्थित हुए । गुरूदेव ने कुशलक्षेम पूछी । इन लोगों ने अपने कड़वे अनुभव बताते हुए कहा - हे गुरूदेव ! मानव समाज में बहुत ढोंग है, इसलिए अधिकांश जनसाधारण अज्ञानता के कारण भटकता फिर रहा है । ढोंगी लोग नये नये जाल रचकर अपनी जीविका के लिए जनता को गुमराह करते हैं और उनका सत्य से विश्वास ही उठ जाता है क्योंकि स्थान स्थान पर पाखण्डियों ने अपनी दुकानदारी अनुसार दलाल फैला रखे हैं जो रूढ़िवादी लोगों को जंत्र, मंत्र तथा तंत्र के झाँसे में लोगों को फुसलाकर भयभीत कर अपना उल्लू सीधा करते हैं अथवा धन ऐंठ लेते हैं ।

गुरूदेव ने उन्हें सांत्वना दी और कहा प्रभु भली करेंगे । ठीक वैसे ही होगा जैसे शेर की गरज सुनकर छोटे मोटे पशु-पक्षी भाग जाते हैं अथवा सूर्य उदय होने पर अंधकार नहीं रहता । जैसे ही शाश्वत ज्ञान का प्रकाश फैलेगा और ये ढोंगी पाखण्डी भाग खड़े होंगे । बस थोड़ा धैर्य रखकर स्वयँ को संयम में लायें और गुरूमति सिद्धान्तों का गहन अध्ययन करके उसी के अनुरूप जीवनयापन करने का अभ्यास करें । गुरू आज्ञा अनुसार इन दोनों ने गुरूदेव के सानिध्य में रहकर उज्ज्वल जीवन जीने की दक्षता प्राप्त कर ली । जब गुरूदेव को महसूस हुआ कि भाई फिराया जी और उनके मित्र कटारा जी 'करनी-कथनी' के बली हो गये हैं तो उन्होंने उन्हें जम्मू क्षेत्र में गुरूमति प्रचार हेतु अपना प्रतिनिधि स्थापित कर मंजीदार नियुक्त किया ।

भाई जेठा जी की सेवा भक्ति

गोइन्दवाल में बाउली का निर्माण चल रहा था, उन्हीं दिनों लाहौर नगर में भाई जेठा जी के चाचा जी के लड़के सिहारीमल जी किसी कारणवश संगत के साथ गोइन्दवाल पधारे । वह विचार कर रहे थे कि मेरा भाई गुरूदेव का दामाद है । अत: यहाँ पर उनका समधि परिवार से होने के कारण भव्य स्वागत होगा परन्तु वहाँ पर सभी के लिए समान व्यवस्था थी । संगत की अधिकता के कारण किसी विशिष्ट व्यक्ति पर भी ध्यान नहीं दिया गया । इस पर सिहारी मल जी बहुत क्षुब्ध हुए । उनकी दृष्टि भाई जेठा जी को खोजने लगी परन्तु वह कहीं दिखाई नहीं दिये । दिन पूरा व्यतीत हो गया । अन्त में उन्होंने सेवादारों से पूछताछ शुरू की कि उनका भाई जेठा कहाँ है ? सेवादारों ने बताया कि वह बाउली के निर्माण हेतू वहीं कार्यरत रहते हैं । यह ज्ञात होते ही सिहारी मल जी तुरन्त वहाँ पहुँचे जहाँ बाउली की कार सेवा (श्रमदान) चल रही थी । उन्होंने वहाँ पाया कि भाई जेठा जी स्वयं बाउली की मिट्टी टोकरी में भरी हुई, सिर पर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाल रहे हैं और बिल्कुल सामान्य मजदूर की भान्ति कार्यरत हैं । सिहारी मल जी मन ही मन विचार कर रहे थे कि भाई जेठा गुरूदेव का दामाद है । अत: वह बहुत तड़क-भड़क के साथ किसी विशेष कार्य का अपनी देख-रेख में संचालन कर रहे होंगे । परन्तु यह क्या, दामाद होकर एक सामान्य मजदूर की भान्ति निम्न स्तर का कार्य । सिहारी मल को यह देखकर बहुत रोष हुआ । वह जेठा जी पर बहुत नाराज हुए और कहने लगे - ससुराल में यदि यही कार्य करना था तो लाहौर में क्या कम कार्य है । हमें कहा होता, हम तुम्हें किसी अच्छे कार्य पर लगवा देते । तुमने हमारी पूरी बिरादरी की नाक कटवा दी है । किन्तु भाई जेठा जी बहुत शांत भाव से उन्हें समझाने लगे । मैं अपने को गुरुदेव का दामाद नहीं मानता । मैं तो उन का सेवक हूँ जो कार्य भी करता हूँ, उनकी खुशी प्राप्त करने के लिए करता हूँ । परन्तु यह सब सेवाभाव उनकी समझ में आनेवाला नहीं था । वह रूष्ठ होकर गुरुदेव के पास चले गये और वहाँ भी अपने रिश्ते-नातों का बड़प्पन दिखाने लगे और कहने लगे - गुरूदेव आप तो समाज के नियमों के ज्ञाता हैं । यदि जेठा अल्पज्ञ है तो आप को चाहिए था कि उसको कोई अच्छा कार्य दे देते, जिससे समाज में दोनों परिवारों का सम्मान बना रहता । इस प्रकार तो हमारे कुल को धब्बा लग गया है । गुरुदेव विचारमग्न उनकी बात सुनते रहे । जब जेठा जी आये तो उन्होंने प्रश्नवाचक दृष्टि से जेठा जी को देखा तो जेठा जी द्रवित नेत्र से कह उठे - हे गुरूदेव ! मैं तुच्छ प्राणी समाज का कीड़ा हूँ, जब मैं अनाथ था तो मेरी किसी ने भी संरक्षणा नहीं की । एक आप हैं कि मुझ गरीब को सम्मानित करके अपने परिवार का अंग बना लिया है । मुझे वह सब कुछ दिया है जो साँसारिक पदार्थो से ऊपर आध्यात्मिक दुनियाँ में अमूल्य रतन है । मैं आपका कोटि कोटि ऋणी

हूँ । परन्तु मेरे इस भाई की अवज्ञा पर ध्यान न दें क्योंकि यह केवल साँसारिक नियमों को जानता है और आध्यात्मिक सूक्ष्मताओं को समझने में असमर्थ है । गुरूदेव ने सिहारी मल जी को कहा - आप कुल अथवा बिरादरी की बातें करते हैं कि हमें नीचा देखना पड़ा है, वास्तविकता यह है कि एक समय आयेगा जब आप लोग जेठे के कारण आत्मगौरव अनुभव करेंगे और आपका नाम प्रकाशमान होगा । यह उत्तर सुनकर सिहारी मल जी वापस लाहौर लौट गये ।

नवीन नगर का निर्माण

श्री गुरू अमर दास जी ने बाउली का कार्य सम्पूर्ण होने पर एक दिन जेठा जी को आदेश दिया कि आप वह भूमि बसाएं जो सम्राट अकबर ने भानी के नाम से दी है । यदि आवश्यकता पड़े तो कुछ भूमि और खरीद कर एक सुन्दर नगर का निर्माण करवाया जाए । आज्ञा पाते ही जेठा जी सत वचन (जो आज्ञा) कह कर परिवार सहित नया नगर बसाने चले गये । गुरूदेव ने उनके साथ सहायता के लिए बाबा बुड्ढा जी को भेजा और कहा कि वह उनका मार्ग दर्शन करेंगे । जेठा जी ने ग्राम गुमराला, तुंए, सुलतान विंड तथा गिलवाली आदि को अपनी योजना के लिए उपर्युक्त पाया और इनमें भवन निर्माण कार्य प्रारम्भ करवा दिया किन्तु पानी के भंडार की समस्या सामने आई। आपने एक विशेष ताल खुदवाया, जिसका नाम सन्तोखसर रखा । इसके पश्चात आपने एक व्यापारिक केन्द्र की स्थापना के लिए एक विशेष बाजार बनवाया, जिसमें प्रत्येक प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हो सके और इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के कारीगर तथा दस्तकारी के विशेषज्ञ को आमन्त्रित करके वहाँ निशुल्क भूमि देकर बसाने का कार्यक्रम चलाया । इसके पीछे विचार यह था कि जीवन की सभी सुख सुविधा यहाँ प्राप्त होने पर लोगों के लिए यह नगर आकर्षण का केन्द्र बनेगा । इस नगर का नाम उन्होंने गुरूदेव की आज्ञा अनुसार चक रामदास रखा जो कि बाद में अमृतसर में परिवर्तित हो गया। इस अन्तराल में आपके यहाँ तीन पुत्रों ने जन्म लिया जिनका नाम क्रमश: पृथ्वीचन्द, महादेव, अर्जुन देव । श्री गुरू अमर दास जी नगर के विकास के कार्यो को स्वयँ देखने आये तो उन्होंने कुछ विशेष सुझाव दिये और कहा - हमारा मुख्य उद्देश्य है कि भविष्य में गुरूमति प्रचार केन्द्र गोइन्दवाल के स्थान पर इस नगर को बनाया जाए । अत: इस नगर में एक विशाल सरोवर तैयार करवाओ जो समय के अन्तराल में सिक्खों का केन्द्रीय स्थल के रूप में विकसित होता चला जाए । जेठा जी ने उनको आश्वासन दिया कि ऐसा ही होगा । सभी कार्यो का निरीक्षण करने के उपरान्त गुरूदेवने सन्तोष व्यक्त किया और जेठा जी को कुछ दिनों के लिए गोइन्दवाल आने के लिए आमन्त्रित किया । वह चाहते थे कि बच्चे (नाती) कुछ दिनों के लिए हमारे पास रहे । उनका आग्रह स्वीकार करते हुए, जेठा जी परिवार सहित गोइन्दवाल चले गये और पीछे एक विशाल सरोवर की आधारशिला रखकर उस पर कार्य प्रारम्भ करवा दिया गया, जिसका नाम गुरूदेव स्वयँ सुझा गए थे - 'राम दास सरोवर' ।

स्वयँ पाकी सन्यासी को उपदेश

श्री गुरू अमर दास जी की स्तुति सुनकर एक संन्यासी उनके दर्शनों हेतु गोइन्दवाल पधारा, उसके मन में प्रबल इच्छा थी कि मैं किसी पूर्ण ब्रह्मज्ञानी से गुरू दीक्षा लेकर अपना जीवन सफल करूँ । सेवकों के समक्ष उसने गुरूदेव से भेंट करवाने की इच्छा प्रकट की । उत्तर मिला कि पहले आप लंगर में भोजन ग्रहण करें तद्पश्चात् दर्शन पा सकते हैं । वह पवित्रता के दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर अपने लिए स्वयँ भोजन तैयार करता था और किसी दूसरे का तैयार भोजन करता ही नहीं था । भले ही वह स्वर्ण जाति का भी क्यों न हो । उस संन्यासी ने सेवकों से निवेदन किया कि मुझे तो आप रसद दे दे । मैं स्वयं पाकी हूँ । यह मेरे जीवन भर का व्रत है । अत: मैं दूसरों द्वारा तैयार भोजन करता ही नहीं । सेवकों ने इस बात की चर्चा गुरूदेव से की । उन्होंने कहा ठीक है अभी तो उसे आप रसद ही दे दें । सेवकों ने आज्ञा अनुसार ऐसा ही किया । संन्यासी रसद लेकर व्यासा नदी के किनारे किसी एकान्त स्थान पर पत्थरों से चूल्हा तैयार करके भोजन कर आया। जब वह गुरूदेव के समक्ष पहुँचा तो गुरूदेव ने मुस्कुराते हुए कहा - हमने आज एक ऐसे साधक को देखा है, जिसने कड़े परिश्रम से तैयार पवित्र भोजन गंदे चमड़े की थैली में डाल दिया है । गुरूदेव के इस व्यंग को संन्यासी समझा नहीं । वह उत्तर में बोला - ऐसा कौन सा मूर्ख है ? जिसने ऐसा घोर अपराध किया है । गुरूदेव ने कहा - वह मेरे समक्ष ही खड़ा है । इस पर संन्यासी बौखला गया । वह कोई और होगा, मैं तो पवित्रता के अन्तिम सीमा तक ध्यान देता हूँ और तब तक भोजन नहीं करता जब तक मुझे विश्वास न हो जाए कि भोजन पूर्ण सनातन विधि अनुसार तैयार हुआ है । गुरूदेव ने उसे कहा कि बात को समझने की चेष्टा करो । हमने कहा है कि पवित्र भोजन को उसने चमड़े की गंदी थैली में डाला है । संन्यासी को फिर से अघात हुआ, वह बोला मैं समझा नहीं । गुरूदेव ने कहा, यह हमारा शरीर एक गंदे चमड़े की थैली ही तो है, इसमें पवित्र अन्न जल डालते ही मल-मूत्र में परिवर्तित हो जाता है और उसमें भारी बदबू आती है । क्या यह ठीक नहीं है? संन्यासी ने सिर झुका लिया और कहा - मुझे क्षमा करें, मैं यह प्रकृति का रहस्य जान ही नहीं पाया, अनभिज्ञ हूँ, ज्ञान की अभिलाषा लिए आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ । गुरूदेव ने कहा - पवित्रता से तात्पर्य केवल जीवाणुओं तथा कीटाणुओं से सुरक्षा करना है, न कि समाज में भ्रम जाल फैलाना और अमूल्य जीवन को पवित्रता के नाम पर कर्मकाण्डों में नष्ट करना । जब लंगर में समस्त समाज के स्वास्थ्य का ध्यान रख कर भोजन तैयार किया जाता है और सभी वर्ग के लोग उसके अधिकारी हैं तो आपने वहाँ से भोजन करने से क्यों इन्कार किया है? सन्यासी को अपनी रूढ़िवादी विचारध रा खोखली दृष्टिमान हो रही थी । उसने गुरूदेव से पुन: क्षमा याचना की और कहा - मुझे ज्ञान दें । गुरूदेव ने कहा - ज्ञान मिलेगा परन्तु पहले भ्रमजाल से उतर कर लंगर में भोजन करके आओ । संन्यासी तुरन्त लौट कर लंगर में भोजन करने गया । सेवादारों ने उसे बहुत आदरभाव से भोजन कराया । संन्यासी ने भोजन करते समय भोजन में अद्भुत स्वाद पाया। उसने जीवन में पहली बार इतना स्वादिष्ट भोजन किया था । जिस कारण वह आनन्दित हो उठा । जब वह पुन: गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुआ तो उसके जीवन में क्रान्ति आ गई थी । वह कहने लगा

- मैंने व्यर्थ में ही जीवन गँवाया है । कृपा मुझे आप शाश्वत ज्ञान प्रदान करें ।

गुरूदेव ने वाणी (शब्द) उच्चारण किया -

भगता की चाल निराली ।
चाल निराली भगताह केरी, बिखम मारगि चलणा ।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाही बोलणा ।
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ।
गुरपरसादी जिनी आपु तजिआ हरि वासना समाणी ।
कहै नानकु चाल भगता जुगहु चुगु निराली ।

पृष्ठ - 918

गुरूदेव ने कहा - जो मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग के पांधी बनना चाहता है वह पूर्ण गुरू के सानिध्य में रहकर अपने अस्तित्त्व को मिट्टी में मिला दे । भाव यह है कि मनुष्य अपने अहं भाव को समाप्त कर तृष्णा की अग्नि को समाप्त कर, निरेच्छुक बनकर एक मृत प्राणी (इच्छा रहित) की तरह जीवन व्यतीत करे । यह मार्ग बहुत कठिन (विषम) है परन्तु इस में प्राप्तियाँ अधिक और तुरन्त हैं ।

गोइन्दवाल में बैसाखी पर्व

गोइन्दवाल में बाउली के सम्पूर्ण होने पर पेयजल की समस्या का समाधान हो गया तो गुरूदेव के समक्ष कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने मिलकर आग्रह किया कि हे गुरूदेव! क्या अच्छा हो यदि आप एक विशेष सम्मेलन का आयोजन करें जिससे सभी सिक्ख समुदाय यहाँ पर एकत्र होकर आपस में मिलने का सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे । इनमें वे सिख जिन को आपने अपना प्रतिनिधि (मंजीदार) नियुक्त किया है, वे भी आपस में मिल सकेंगे तथा उस क्षेत्र की संगत को यहाँ आने का शुभ अवसर प्राप्त होगा। जिससे उनको गुरूमति सिद्धान्त दृढ़ करवाने तथा सिख आचार-संहिता को समझने में सहायता मिलेगी । गुरूदेव इस प्रस्ताव को सुनकर अति प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा - शीत ऋतु समाप्त होने पर बैसाखी पर्व को यह सम्मेलन निश्चित किया जाए और सभी मंजीदारों तथा पीढ़ेदारों को सम्मेलन में अपने क्षेत्र की संगत के साथ उपस्थित होने का लिखित आदेश भेज दिया जाये । ऐसा ही किया गया और गोइन्दवाल में विशाल पंडाल और निवास स्थान तैयार किये जाने लगे । संगातें में बहुत उत्साह था। वह समय से पूर्व ही पहुँचने लगे और चारों तरफ मेले जैसा वातावरण बन गया । संगत की अधिकता के कारण केन्द्रीय स्थल के अतिरिक्त और बहुत से स्थानों पर लंगर का आयोजन किया गया । मुख्य पंडाल में कीर्तन, कथा के अतिरिक्त गुरूदेव स्वयँ संगत को सम्बोधन करते हुए प्रवचन करते । गुरूदेव ने कहा - मनुष्य और प्रभु में केवल अहं भाव ही दीवार रूप में खड़ा है । यदि हम अपने अहं भाव को समझने की चेष्टा करके यह जान ले कि हम केवल शरीर नहीं हैं । शरीर तो केवल एक माध्यम है अर्थात हमारी आत्मा के रहने के लिए घर अथवा मकान है । इस में बसने वाली आत्मा ही शुद्ध ब्रह्म है, केवल आत्मा पर अभिमान रूपी मैल चिपकी हुई है, जिसे हमने नाम रूप जल से धोना है, जिससे वह प्रकट हो जाए अथवा दूसरे शब्दों में हमारी आत्मा रूपी शुद्ध ब्रह्म सूक्ष्म रूप में है अथवा गहरी निन्द्रा में सो रहा है । हमें हरिनाम के अमृत से उसे सूक्ष्म रूप से विकसित करना है अथवा हरि नाम के अमृत से अचेत अवस्थाको जागृत करना है । जिससे वह स्वयँ के अस्तित्त्व को समझ सके और देह अभिमान को त्यागकर पूर्ण ब्रह्म होने का आनन्द प्राप्त कर सके ।

उपर्युक्त उपदेश सुनकर वहाँ पर पधारे मोहण, रामू महिता, अमरू तथा गोपी इत्यादि मित्र अपनी शंकाओं का समाधान चाहने के लिए अवकाश के समय गुरूदेव के समक्ष उपस्थित होकर प्रार्थना करने लगे - हे गुरूदेव ! हम प्रभु की निकटता चाहते हैं किन्तु प्रयास करने पर भी जीवन में कोई क्रान्ति नहीं आई । आप हमारा मार्गदर्शन करें । गुरूदेव ने उनकी समस्या को समझा और कहा - हमारा भजन तब तक फलीभूत नहीं होता जब तक हम अपनी मैं को नहीं मारते । भाव यह है कि हम मैं-मैं, कहने के स्थान पर तू ही तू ही करेंगे तो बात बन जाएगी । सीधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विचारधारा में परिवर्तन लाना ही एकमात्र उपाय है । जहाँ हम यह सोचते हैं कि यह कार्य मेरे द्वारा किया गया है या मैंने किया है वहाँ हमें विचारना चाहिए कि यह कार्य मुझ से प्रभु ने करवाया है, मुझे इस कार्य की क्षमता अथवा बुद्धि उसी प्रभु ने प्रदान की है । मैं मैं नहीं हूँ, वही है जो ह में विराजकर सभी निर्देश देकर कार्य सम्पन्न करता है अर्थात हमें अपने अहंभाव को जो हम में सूक्ष्म रूप में सदैव विद्यमान रहता है, समझना है । यदि हम अपनी इस 'मैं' को समझ जाएंगे तो यह हमारे और प्रभु में रूकावट नहीं बनेगी और हम पूर्ण रूप में प्रभु चरणों में समर्पित हो सकेंगे । इस लिए बड़े गुरूदेव ने अपनी वाणी में कहा है -

'हउमै बुझै ता दरु सूझै ।'

भावार्थ यह है कि हमें अपने सूक्ष्म अभिमान को समझ कर उससे निर्लेप रहना चाहिए तभी उस प्रभु का घर दृष्टिगोचर होगा । नहीं तो यही अभिमान हमारे और प्रभु के बीच दीवार बनकर खड़ा हो जाएगा जिससे बंधन पड़े रहेंगे और हम आवागमन के चक्रव्यूह से मुक्त नहीं हो सकते । बड़े गुरूदेव इस के लिए कह गये हैं -

'हउमै एई बधना, फिरि फिरि जोनी पाहि ।'

'हउमै' अर्थात अहँकार ही हमारे बंधनों का कारण है, जो हमें मंजिल से दूर रखता है ।

यह शिक्षा प्राप्त कर सभी जिज्ञासु गुरूदेव को प्रणाम कर बैसाखी पर्व का आनन्द लेकर घरों को प्रसन्नतापूर्वक लौट गये ।

भाई प था जी

श्री गुरू अमर दास जी के दर्शनों को दूर-दूर से संगत आती रहती थी अत: गोइंदवाल सदैव भीड़ बनी रहती थी। गुरुदेव जी के क्रांतिकारी उपदेश सुन कर लोगों में जागृति आ रही थी। इन्हीं दिनों गुरूदेव की बिरादरी के कुछ लोग जो जाति प्रथा के आधार पर उन के गौत्र इत्यादि के थे स्तुति सुनकर दर्शनों को आये। किन्तु उनके मन में एक सूक्ष्म अभिमान उत्पन्न हो गया कि हमारी जाति भी वही है जो गुरुदेव की है। वे संगत में अपने को श्रेष्ठ मानने लगे और अपने मुंह स्वंय ही बढ़ाई करने में ही समय नष्ट करने लगे। जब वे गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित हुए तो वहां भी उन्होंने तथाकथित जाति अभिमान का प्रकटाव किया और कहा-गुरु जी आप की जाति और हमारी जाति एक ही है। इसलिए हमें प्राथमिकता मिलनी चाहिए। यह सुनकर गुरुदेव ने कहा-भाई पृथा जी गुरु नानक के घर में समस्त मानव एक सम है कोई छोटा बड़ा नहीं है। इसी प्रकार प्रभु की दृष्टि में भी सभी उस की सन्तान हैं वह सभी का पिता है उस के दरबार में तो सत्य के आधार पर न्याय होगा वहां पर जाति-पाति का चक्रव्यूह है ही नहीं। यह सभी मन-घड़नत बातें बना कर कुछ चतुर लोगों ने समाज का वर्गीकरण कर के अपना उल्लू सीधा किया है। आध्यात्मिक दुनियां में प्रवेश करने पर आप पायेंगे कि शरीर का अभिमान अथवा जाति अभिमान बन्धन है ये बातें मानव कल्याण के मार्ग में बहुत भारी बाधक हैं क्योंकि इन का महत्व आलौकिक संसार में नहीं है वहां यह बातें मिथ्या हैं अत: जो गौण वस्तु है उस पर अभिमान करना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है तो पहले वह अपने मन से इन निरार्थक बातों का बोझ उतार कर, शुद्ध मानव बन कर गुरु की शरण में आये क्योंकि गुरु इन कमजोरियों वाले व्यक्ति को स्वीकार नहीं करते।

जाति का गरबु ना करीअहु कोई।।
बहमु बिंद सो ब्राहमणु होई।।१।।
जाति का गरबु न करि मूरख गवारा।।
इसु गरब ते चलहि बुहतु विकारा।।१।।रहाउ।।
चारे वरन आखै सभु कोई।।
ब्रहम बिंद ते सभ ओपति होई।।२।।
मति एक सगल संसारा
बहु विधि भांडे घड़ै कुमाःरा।।३।।

भैरउ म०३ पृष्ठ ११२८

उपरोक्त उपदेश सुनकर पृथा जी ने गुरु चरणों में शीश झुका कर जाति अभिमान के लिए क्षमा याचना की और कहा मैं पिछली भूलों के लिए भी प्रायश्चित करूंगा क्योंकि मैंने बहुत से निम्न वर्गों के लोगों को ठेस पहुंचाई है।

पण्डित बूला जी

सत्य की खोज में विचरण करते हुए पण्डित बूला जी श्री गुरु अमर दास जी के दरबार में उपस्थित हुए। कुछ दिन गुरुदेव के प्रवचन सुनते रहे उन्होंने जान लिया की गुरमति का तत्थसार यह है कि अपने कल्याण के लिए समस्त प्राणी मात्र की सेवा करना और श्वासों की पूंजी को भजन-बंदगी में प्रयोग करना ही है अन्यथा अमूल्य मानव जीवन निरार्थक होकर निष्फल चला जाता है। अत: उन्होंने प्रयास किया कि वह संगत की सेवा में समय व्यतीत करें। किन्तु उनके कोमल शरीर को देखकरप्रबन्धक उनसे किसी प्रकार की सेवा नहीं लेते थे। फिर भी उनका मन जन-साधारण की सेवा करने का इच्छुक रहता। एक दिन वह गुरुदेव के समक्ष प्रार्थना करने लगे, मैं आप के उपदेशों अनुसार जीवन जीना चाहता हूं किन्तु मुझसे कोई सेवा करवाने के लिए राजी नहीं होता। गुरुदेव ने उन के हृदय की सच्ची भावना देखकर कहा - आप सांसारिक विद्या के ज्ञाता हैं और अब आध्यात्मिक दुनियां का भी ज्ञान रखने लगे हैं। अत: आप की सेवा यह उचित रहेगी कि आप गुरूवाणी की लघु पुस्तकें तैयार कर के संगत में जिज्ञासु लोगों में वितरण करें। यदि कोई उस का दाम दे तो ले भी सकते हैं जिससे आप की जीविका बनी रहे । इसके अतिरिक्त संगत अथवा जन-साधारण में कथा भी किया करें जिससे आप का अभ्यास बढ़ेगा और जनता को ज्ञान प्राप्त होगा । किन्तु एक बात का ध्यान रखना है। कथा करते समय उद्देश्य केवल ज्ञान बांटना होना चाहिए न कि अपनी विद्वता दर्शाना अथवा अपने को विद्वता प्रकट करना ।

उत्तराध्किारी का चुनाव

श्री गुरू अमर दास जी की आयु 94 वर्ष की हो गई थी तो वह अनुभव करने लगे कि मुझे परम पिता परमेश्वर के घर से वापस लौटने का संदेश आ गया है । अत: उन्होंने अपना उत्तराधिकारी चुनने का निश्चय किया । एक दिन उन्होंने सुबह के दीवान की समाप्ति के पश्चात्

अपने दोनों पुत्रों मोहन जी, मोहरी जी तथा दामादों रामा जी और जेठा जी को बुला लिया । उनके आने पर आपने सभी को आदेश दिया कि आप लोग बाउली के बाहर एक एक मंच (थड़ा) तैयार करें, जिस पर हम अवकाश के समय बैठकर संगातें से विचारविमर्श कर सकें । यह अनोखा सा आदेश सुनकर उनके पुत्रों ने कहा – अभी कोई कारीगर नियुक्त कर देते हैं, वह मंच तैयार कर देगा और वह चले गये । किन्तु राम जी और जेठा जी मंच तैयार करने में लग गये। जब दोनों मंच तैयार हो गये तो गुरू देव उनका निरीक्षण करने पधारे । निरीक्षण करते हुए उन्होंने पाया कि मंच उन के आदेश अनुसार नहीं बने । अत: पुन: आदेश दिया कि ये दोनों मंच गिरा दिये जायें और पुन: नये मंच हमारी इच्छा अनुसार एक विशेष नाप-आकार के बनाये जायें । दोनों दामादों ने मंच गिरा दिये और गुरूदेव की इच्छा अनुसार मंच बनाने लगे । परन्तु गुरूदेव ने इन दोनों मंचों में फिर त्रुटियाँ निकाल दी और फिर से नये मंच तैयार करने को कहा । इस पर रामा जी कहने लगे – यह मंच तो आपके बनाये नाप और आकार के अनुसार ही तैयार किया गया है । जब कि जेठा जी ने कोई टिप्पणी नहीं की । केवल सतवचन कह कर पुराना मंच गिरा दिया और नया तैयार करने में जुट गये । मन मारकर रामा जी भी पुन: नया मंच तैयार करने में व्यस्त हो गये । संध्या को जब मंच तैयार हुए तो गुरूदेव ने निरीक्षण करते समय दोनों मंच रद्द कर दिये और उनमें अनेकों त्रुटियाँ निकाल दी । इस बार रामा जी शांत नहीं रह सके, वह कह उठे – पिता जी जैसा आपने बताया था यह ठीक उस नाम-तोल का है । अब इससे अच्छा मुझ से नहीं बन सकता । इसके विपरीत जेठा जी ने कहा – मैं अल्पज्ञ हूँ, मुझ से अवश्य भूल हुई है, मुझ परआप कृपा दृष्टि करें जिससे मैं मंच आपकी आज्ञा के अनुकूल तैयार कर सकूँ और फिर से काम में जुट गये । अगली संध्या को गुरूदेव ने उनके मंच में फिर से कमियाँ निकाल दी । इस पर जेठा जी द्रवित नेत्रों से गुरूदेव के चरणों में गिर पड़े और याचना करने लगे कि मुझे आप विवेक बुद्धि प्रदान करें, जिससे मैं आपके मनभावन मंच तैयार करने में सफल हो जाऊँ । बस जेठा जी कि नम्रता देखकर गुरूदेव ने उन्हें कंठ से लगा लिया और कहा बेटा मुझे यह मंच (थड़े) नहीं चाहिए मुझे तो केवल तुम्हारा स्नेह चाहिए था और उन्होंने समस्त संगत के समक्ष घोषणा कर दी कि मेरे पश्चात् गुरू नानक देव जी की गद्दी का उत्तराधिकारी जेठा जी होंगे । अगली सुबह आपने जेठा जी को अपने आसन पर बिठाकर बाबा बुड्डा जी से सभी धार्मिक प्रथाएं सम्पूर्ण करके जेठा जी को नये नाम से अलंकृत किया और उनका नाम रखा राम दास और उनके चरणों पर अपना शीश झुका दिया । तदपश्चात अपने दोनों पुत्रों और बड़े दामाद रामा जी को भी शीश झुकाने को कहा – सभी ने गुरू आज्ञा अनुसार ऐसा ही किया फिर समस्त संगत ने राम दास जी (जेठा जी) को गुरू मान कर शीश झुका दिया ।

गुरूदेव परम ज्योति में विलीन

श्री गुरू अमर दास जी ने परम ज्योति में विलीन होने से पहले अपने परिवार के सभी सदस्यों को तथा संगत को एकत्रित किया और कुछ विशेष उपदेश दिये । इन उपदेशों को उनके पड़पौते सुन्दर जी ने राग रामकली में 'सदु' के शीर्षक से एक रचना द्वारा बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है । श्री सुन्दर जी, श्री आनन्द जी के सुपुत्र तथा बाबा मोहर जी के पोते थे । यह वाणी गुरू ग्रन्थ साहब में संकलित है । गुरूदेव ने अपने प्रवचनों में कहा – मेरे देहान्त के पश्चात किसी का भी वियोग में रोना बिल्कुल उचित नहीं होगा क्योंकि मुझे ऐसे रोने वाले व्यक्ति अच्छे नहीं लगते । मैं परम पिता परमेश्वर की दिव्य ज्योति में विलीन होने जा रहा हूँ । अत: आपको मेरे लिए एक स्नेही होने के नाते प्रसन्नता होनी चाहिए । गुरूदेव ने कहा – सँसार को सभी ने त्यागना ही है, ऐसी प्रथा प्रभु ने बनाई हुई है । कोई भी यहाँ स्थाई रूपमें नहीं रह सकता, ऐसा प्रकृति का अटल नियम है । अत: हमें उस प्रभु के नियमों को समझना चाहिए और सदैव इस मानव जन्म को सफल करने के प्रयत्नों में व्यस्त रहना चाहिए ताकि यह मनुष्य जीवन व्यर्थ न चला जाए ।

गुरूदेव ने कहा – मेरी अंत्येष्टि के समय किसी प्रचलित कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं है । मेरे लिए केवल प्रभु चरणों में प्रार्थना करना और समस्त संगत मिलकर हरि कीर्तन करना और सुनना । कथा केवल प्रभु मिलन की ही की जाए । इस कार्य के लिए भी संगत में से ही कोई गुरूमति का ज्ञात व्यक्ति चुन लेना, तात्पर्य यह है कि अन्य मति का प्रभाव नहीं होना चाहिए । केवल और केवल हरिनाम की ही स्तुति होनी चाहिए ।

यह आज्ञा देकर आप एक सफेद चादर तानकर लेट गये और शरीर त्याग दिया। आप एक सितम्बर 1574 तद्नुसार भाद्रव सुदी 15 संवत 1631 को दिव्य ज्योति में विलीन हो गये ।

सतिगुरि भाणै आपणै बहि परवारु सदाइआ ।
मत मै पिछै कोई रोवसी सो मै मूलि न भाइआ ।

यथा

अंते सतिगुरु बोलिआ, मैं पिछै कीरतनु करिअहु निरबाणु जीउ।

पृष्ठ 923

उनकी इच्छा अनुसार बिना किसी कर्म काण्ड के व्यासा नदी के किनारे अंत्येष्टि कर दी गई । बाढ़ के दिनों में वह स्थल नदी में लुप्त हो गया और शेष कुछ भी न रहा ।

।। इति श्री ।।